मूल्य एक रुपिया
<table>
<thead>
<tr>
<th>विषय-सूची</th>
<th>पृष्ठ संख्या</th>
</tr>
</thead>
<tbody>
<tr>
<td>जीवन-सामग्री</td>
<td>१</td>
</tr>
<tr>
<td>बंग परम्परा</td>
<td>४</td>
</tr>
<tr>
<td>बैराग्य</td>
<td>२५</td>
</tr>
<tr>
<td>दीक्षा</td>
<td>२६</td>
</tr>
<tr>
<td>प्रकृतिद्रव्य दर्शन</td>
<td>३७</td>
</tr>
<tr>
<td>मान्यतिक जीवन</td>
<td>५१</td>
</tr>
<tr>
<td>स्फुट प्रशंसा</td>
<td>५७</td>
</tr>
<tr>
<td>ब्राह्मण यात्रा</td>
<td>६३</td>
</tr>
</tbody>
</table>
दो शब्द

प्रथम दाँ १४ द्रूपदान की हर्ष ‘मुरदास’ (जीवन गाम्बरी) प्रा प्रवा-धन मृत्तिका मोट के मन्त्रित्वणक द्रम में धारा में दाम कां धूर्त हो जाता चाहिए था। पति नेत्रन-नाम में प्रवा भवित होकर, रजना में ज्ञान दृष्टिकोण धोर विचारणा को जो मदत दिनता, यह धारा नहीं मिल भरा, क्योंकि उस समय प्रकाशित होने पर इन विश्वास पर विचारने वाले परवर विश्वास दिना उपयोग, विश्वास एवं विचारणा पर समते थे। पर धारा ऐसा समय नहीं है। इस वीं में मुरदास के जीवन धोर शास्त्रिय से समय दिननेवासी शेषेंक रजनागे प्रकाशित हो पुर्य है, जिनमें विशेष महत्वपूर्ण दाँ १४ जनार्दन मिथु यत ‘मुरदास’, महाराज दाँ १४ हजारिमगद धीरेडी यत ‘मृत्माधोत्रिय’, दाँ १४ रामस्तम भट्टाकार यत ‘मृत्माधोत्रिय की नृतिका’, पूर्ण मृत्युरास शामी ‘यत मृत्म समर’, दाँ १४ दीनवानु मुख्य यत ‘प्रभृद्दाप धोर वल्लम सम्प्रदाय’ तथा दाँ १४प्रजना-ध्वर वर्म यत ‘स्वर्गदास’ हैं। इसमें प्रथम तीम में सामान्य, किंतु प्रतिमा तीम में विनेश्य ग्रोजूर्ण प्रथ्व प्रस्तुत किये गये हैं। विनार धोर दृष्टिकोण की नवीनता यह ‘स्वर्गदास’ में मिलती है, किंतु समस्त सामानी का तरफ संग्रह प्रथ्व पर विचारण के ‘प्रभृद्दाप धोर वल्लम-सम्प्रदाय’ में प्रश्न होता है। ‘स्वर्गदास’ में समस्त सामानी का उपयोग-कर पूरी जानकारी सामने रखती थी है, किंतु निर्देशन धोर विच्छेदय
( २ )

अधिक गंभीर और सर्वमान्य नहीं। यह प्रवचन है कि श्रन्तिम अध्ययन द्वारा सूर के जीवन और साहित्य-सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश दाने के प्रयास की पूर्णता हो जाती है।

इतना होते हुए भी विद्वानों में उनके जन्मस्थान, जन्मतिथि, जाति, माता-पिता, रचनाओं शादि से सम्बन्धित उल्लेखों में वड़ा मतभेद है। और भिन्नित्व रूप से आर की भी नहीं कहा जा सकता कि इतने से किसी भी एक विद्वान् का मत पूर्णतया मान्य है, क्योंकि उसके विपक्षी मंत्र के सम्बन्ध में भी, समुचित तर्क पर्याप्त माना में मिल जाते हैं। उदाहरणार्थ डॉ० गुप्त का मत है कि ‘सूरसारावली’ सूर की स्वतंत्र, निजी एवं पूर्ण रचना है। यह न केवल सूरसागर की विषय-सूची मान्य है, वरन्, उसका और भावगत की कथा का संक्षिप्त सारांश है। अपने इस कथन के पक्ष में उन्होंने अनेक प्रमाण दीये हैं। डॉ० प्रजेश्वर वर्मण का मत इससे भिन्न है। उनके अनुसार यह अष्टछापी सूरदास की नहीं, वरन् किसी अन्य सूरदास की कृति हैं; क्योंकि सारावली के ग्रंथगत जो आत्म-विज्ञापन का भाव है वह अष्टछापी सूर की प्रकृति के विरुद्ध पड़ता है। साथ ही साथ भाव और रचनादौरी में भी उन्हें भिन्नता दिखलाई देती है। उसके भी उन्होंने अपने तर्क और प्रमाण खोदिये हैं। इस प्रकार मत-भेद का प्रवक्ता इतने प्रमाणों की रचनार्थ यह भी बना रहता है।

३ देखिये ‘अष्टछाप और चललभ सम्प्रदाय’, भाग १; पृष्ठ २६५।
४ देखिये ‘सूरदास’ (डॉ० प्रजेश्वर वर्मण), पृष्ठ ३३।
( २ )

ऐसी वस्तु में दो वर्षाकों के दृष्टिकोण से प्रस्तुत इस नामीयों की प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। फिर तक नामीयों के प्रामाणिकता का प्रमाण है, वहाँ तो उन्होंने जिन गोता का उपयोग किया है, वे प्रथम सम्बन्ध नहीं, क्योंकि वे प्रायः नामंतरों को मूर्द्धांत मदन-मोहन ग्रीर नूरदराम किव्वङ्गाल भांड के माय मिला देने का अभ्य उत्साह करते हैं। फिर जहाँ तक उन नामीयों के विवेक-सार, ब्याग्य ग्रीर फल-स्वरूप निग्नायों का प्रदन है, प्रस्तुत प्रधान्य महत्वपूर्ण है ग्रीर इसमें प्राप्त धनेक अरुणमानों ग्रीर नूरासों को महत्वपूर्ण मिला नहीं किया जा गया।

दो वर्षाकल की द्वन दृष्टि में, नूरदराम के सम्बन्ध में विचारी मामीयों को एकता करके उने विचार-सूत्र-धरा गृह्यकर योगांक का प्रथम प्रयत्न है। (जो प्रकाशन-संघ से ही ग्राम ग्रंथिम हो गया है) ग्रीर इस प्रकार ऐतिहासिक शृंदस्त्र से इसका महत्व है। विस्तृत रूप में प्राप्त ग्रंथमक्षय ग्रीर विश्वाचरणों के प्राधार पर निकाले गये निपत्तयों में महत्वदद्ध होने के कारण, ग्राम भी उनके दृष्टिकोण का महत्व देशा जाता है। चाहा है कि तुलनात्मक प्रधान्य के लिए सुर के विचारियों को यह दृष्टि उपयोगी एवं महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

—भीरेन्द्र सिंधु
जीवन-सामग्री

भारतीय कवि अपनी कविता के प्रचार के जितने हल्दु के रहे हैं उतने स्वयं अपनी व्याप्ति के नहीं। परिस्थिति, कवियों की रचनाओं में पाये जानेवाले प्रतिसाधन उनकी इस प्रयूति के साथ हैं। न जाने कितने कवियों की कृतियाँ धाराभंग हो गईं। हमारे हृदय को अनंतांत्रित कर रही है, फिर हमारे पास यह जानने का साधन नहीं कि हमें उनके लिए किसका क्रमम थी होना चाहिए। आत्म-प्रयूति की इसी उपेक्षा के कारण धाराबंधन से निकलकर कवियों का नाम तक अजीब के अंदरकारम गई में विलास हो गया है। जिन कवियों को यह उपेक्षित व्याप्ति धाराभंग हुई है, उनका भी हम नाम ही नाम जानते हैं, इनके जीवन की घटनाओं के प्रामाण्यक विवरण हमें उपलब्ध नहीं होते; उनके संबंध में जिज्ञासा-गृहस्ति का, अनुमान ध्वर और फिंच्चितियों को झोंककर ध्वर कोई साधन नहीं रह जाता।

ऐसी दशा में उनकी रचनाओं में यदि परोक्षप्रभाव से भी कहीं उनके जीवन की घटनाओं की ध्वर कोई संभव संकेत मिल जाता है तो उसी के सहारे अनुमान भिड़ा जाता और फिंच्चितियों को प्रस्थायीपूर्ण से सत्य मानने के लिए वाध्य होना पड़ता है।

यथापि सूरदास का जीवन-नृत्त संपूर्णत बना करने के लिए भी अनुमान का स्वभाव ध्वर और फिंच्चितियों का सम्भाव्य धार्मिक है, किंतु सौभाष्यवाद
उसके लिए कुछ और सामग्री भी इसमें सुलभ है। स्वयं सूरदासजी ने अपनी वंश-परंपरा के संबंध में 'साहित्य लहरी' में एक पद कहा है। इसके प्रतिरिक 'हाइनेयक्षरी' 'मुंतविविल्द तवारीक' और 'सुंदियात श्रवक फ़जल' में उनका अर्थ उनके पिता का उल्लेख मिलता है। हाइनेयक्षरी का कर्ता श्रवकर वादशाह का चंजीर शेख श्रवक फ़जल नागरी था। श्रवक फ़जल का चंजीर भाग हो और वाद-वात पर उसे बढ़ाने का प्रयत्न करता था। अन्य मुसलमान लेखकों की तरह हिंदुओं की शिक्षा नहीं करता था। क्योंकि वह सुंदिया मुद्रा का प्रयत्न करता था। 'सुंदिया श्रवक फ़जल' भी इसी हिंदी मुसलमान चंजीर के समय-समय पर लिखे नामों का संमाह है। जिसका उसके मानजे एडुलसमद ने संवत 1663 में लिखा किया था। मुंतविविल्द तवारील की रचना भी श्रवकर के राजत्वकाल में हुई थी। इसका रचयिता सुझा एडुलकादिरहै, जिसका श्रवकर से धार्मिक संबंध था। बहुत सी शायद जो एडुलक ने पत्र लिखे नहीं लिखी थीं, वे इस इतिहास अंत में विलियत हैं। वैसे प्रसंग के विलियत के प्रसंग में इसमें सूरदास के पिता का उल्लेख है।

भक्तों ने भी सूरदास के संबंध में कुछ लिखा है। गोकुलनाथजी के नाम से प्रचलित 'चौरासी वैष्णव की चारौं' में सूरदासजी के जीवन के कुछ प्रसंग विलियत हैं। गोकुलनाथ का जन्म संवत 1608 में हुआ था और सूरदास की मृत्यु जन्मांग 1615 में हुई। अतः गोकुलनाथजी की लिखी चारौं को कुछ कुछ मामलक लागा जाते हैं। कुछ घटनाएँ तो उन्होंने अपनी आंखों देखी होंगी और जो रात उन्होंने सुनकर लिखी होंगी उनमें भी तथ्यांश रहा होगा। सूरदास आदि-आदि अन्य भक्तों की रचनाओं में भी कहीं-कहीं सूर का उल्लेख मिल जाता है। नामदेव जी ने सूरदास पर एक छप्पय लिखा है जिसकी टीका में प्रियादास ने सूरदास का कुछ वृत्त लिखा है। इसका आधार जनश्रुति ही
उपर की बहुत कुछ सामग्री के आधार पर मुंशी देवीप्रसाद घोर चाचू राधाकृष्णदास ने सांवत १६६२ में सूरदास की श्रद्धा-श्रद्धा छोटी-छोटी जीवनियाँ लिखीं। हमने इन दोनों पुस्तकों से यथेष्ट लाभ उठाया है, यद्यपि जहाँ तक वन पदा है, हमने मूल सामग्री को देखे विना कोई सत्य नहीं किया है।

८ सरोज, नवलकिशोर प्रेस, सन १६२६, पृ० ४१०।
वंश-परंपरा

साहित्यलेखिन में सुरदास ने अपनी वंश-परंपरा का इस प्रकार वर्णन किया हैं-

प्रथम पृथु याग तें मे प्रगट श्रद्धुत रूप।
ब्रह्मारव विचारि ब्रह्मा राजु नाम श्रद्धुप।
पान पय देवी दयो, निव श्रादि सृज़ मुख पाय।
कह्यो, दुर्गा! पुत्र तेरो भयो श्रस्ति श्रविकाय।
पारि पायन सुरन के, सुर सहित स्तुति कीन।
तासु वंश प्रसिद्ध मै, मोंचंद चारु नवीन।
भूप पुष्वोराज दीनो तिनाह ज्वालादेश।
तनय ताके चारि, कीने प्रथम श्रापु नरेश।
दूसरे गुन चंद्र, ता सुत शील चंद्र सर्दर।
बीरचंद्र, प्रताप पूरन भयो श्रद्धुमूर्त रूप।
रत्नभार हुमिर रूपति संग तेलत श्राय।
तासु वंश श्रद्धुप भो हरिचंद्र श्रस्ति विष्णुय।
श्रागरा रहि गोपचल में रहे ता सुत वीर।
पुत्र जन्मे सात ताके महाभाटं गंभीर।
कुण्डचंद्र, उदारचंद्र जु रूपचंद्र सुभाय।
बुद्धिचंद्र प्रकाश चौयो चंद्र भो सुखदाय।
देवचंद्र प्रवोध संसृतचंद्र ताको नाम।
भयो सप्तो नाम सूरजचंद मंद निकाम।
सो समर करि स्वाहितेवक गये विधि के लोक।
रघुए सूरजचंद्र दूरति ते हीन महर वर शोक।
परो कूप पुकार काहु ना सुनी संसार।
सातबेँ दिन भ्राय यदुपति कोह भापु उधार।
दियो चप, दै कहीं, गियु मांपु वर जो मन चाह।
हीं कही प्रभु भवित चाहत गमु नाश सुभाष।
इससरो ना रूप देखें देवि रायमध्यम।
सुनत करुषासिद्ध भागी एवमस्तु मुखाम।
प्रफल दच्छि विक्रुल ते शनु हैं है नास।
श्रवित वृद्धि विचारि विखामान माने सास।
नाम राखे मोर सूरजदास सूर मुख्याम।
भयें तत्तत्वं वोते पादिनी निसि जाम।
मोहि पन सी इहैं ब्रजको वसे मुख चित याप।
वाप गोसाई करी मेरी भ्रात मध्ये छाप।
विप्र पृथु के वाम को हैं भाव मूरि निकाम।
सूर हैं नंदनंद जूं को मोल लयो गूलाम।

यथार्थ पहले पूजुराजा के यज्ञ में से एक प्रज्ञुत मुखावला पुस्प उत्पच
हुआ जिसका नाम गदा ने विचार कर महरावर रखवा।
स्वयं हुराने स्वप-पान करकर उसका गोपहय किया।
शिव श्राद्धं देवताओं को इससे पड़ा नाशंत हुआ।
उन्होंने उसकी विशिष्टता पूर हुराने को वदाई दी।
देवी ने उसे देवताओं के चरसं में सूचना कराया।
उसने देवताओं की नुति।
की। इसी भाषार के वंश में सुन्दर नवीन (चंद्रमात्सर्ग) चंद्र उत्थत हुआ जिसको पुष्पोसार से व्यालांश धारन दिया। मंदिर के चार लड़के हुए। पहले को स्वयं चंद्र ने व्यक्ति देश का ताजा बनाया। दूसरी का नाम गुणचंद था। गुणचंद के शीलचंद हुआ जो रूपवाण था। शीलचंद का चीरचंद हुआ जो स्थानमौर के राजा हमीर का वाजस्था था।
इसी वीरचंद के वंश में प्रसिद्ध श्यामवले हसरचंद उत्थत हुए।
हसरचंद का चीर पुत्र उगारे से आकर गोपालम में रहने लगा। वहाँ
उसके साथ पुत्र उत्थत हुए जो-बड़े चीर थे। कप्प्यचंद, उद्यारचंद,
खंडचंद, उद्यारचंद, देवचंद, प्रभोचंद संसार में चंद्रमा के समान
थे। इसी सत्यवाण जिसका नाम चुंबजंद था मनुजुलिन्द्र और निकम्मा हुआ।
इसी सत्यवाण का जीवन शोकपूर्ण सूरजचंद बच रहा। मैं प्रथम कृपां में घाय पड़ा।
किसी ने मेरा रोना-रहिताणा न छुआ। सत्यवाण दिन स्वयं शहीदगति कृपा ने
कृपा से मेरा उदार किया। उन्होंने मुझे आँखें प्रदान कर नींदोलोहित
वर मांगने को कहा। मेरे स्वभाविक रूप से वर मांगा कि एक तो मुझे
आपकी भक्ति मिले, दूसरे हमसे सुलगों का नाश हो और तीसरे यह कि
जिन आँखों से राजाप्रशास के दर्शन किये हैं उनसे श्रीकृष्ण का रूप न
देखने पाएं। ऐसाही होंगा, कहकर उन्होंने मुझे आश्रय दिया कि
दुःख के प्रवाल बाह्य-कुल के द्वारा तुष्करे शामुकों का नाश होगा
और तुम बुद्धि, विचार और विचार से युक्त होगे। मेरा नाम सूरजदास
और सूरजमार रखकर वे पिछली रात वीते अंतर्गत हो गये। मेरा प्रश्न
वहीं हो गया कि व्रजवास से भास्कर वो तपस्वि श्रीकृष्ण को चिन्ते में त्यागित
करें। गोसाइंजी जी ने अध्याय में मेरी स्थापना की। पूर्व यह से उत्पत
कुल का वाहक होने के कारण ही मेरा लोग बहुत मूल्य करते हैं, नहीं
जो में नंद-नंदन कुल का ख़रीदा हुआ। युगमास बहुत ही निकम्मा हूँ।"

सूरजदास जी का यह पद सबसे पहले 'धामभव प्रकाश' नामक मंथ
मैं उद्देश्य किया गया, परंतु संपूर्ण नहीं। मथन चार पण कौन धान का पूक, कुल मिज़ाज़ पौँच पर दमसे उद्देश्य है। माधिक जहरी के इस पद की गोल पहले पहल माधिक भुजियाँ का अमा भारत करने का श्रेय भारतेनु या या हरिचंद को है। संवत १६३५ में श्रीभग्नी हरिचंद-पंजिका में दर्जनि पूरा घर्षण था यहिसे इस पद पर विचार किया गया था। इस पद के भ्रमुचार गृहदाम की परंपरा यां दर्जहती है—

माध्यम

कृपा वशिष्ठ वंशापर

पद

सरार गुरुचंद

श्रीरचंद

चीरचंद ( सं १६३६ के लगभग )

कृपा वशिष्ठ वंशापर

हरिचंद

घुर का पिता ( नाम नहीं दिया है )

श्रीरचंद, उदारचंद, स्वचंद, शुद्धरचंद, देवचंद, प्रयोजनचंद, सुरजचंद,

महामहोपाध्याय हरिचंद शास्त्री जी को घुर का एक धीर वंशावधा मिता है। शास्त्री जी ने सन १६०६ से सन १६१३ तक ऐतिहासिक काव्य की कोश के संबंध में सातवाहनों में तीन यात्राएँ की थीं जिनका विवरण
यहाँ की पृथिवीदिक मोगाधर से पुष्प है। इसी विभाग में उन्होंने चंद्र का विशेषण भी दिया है जो उन्होंने नन्द के गंभीर्यों की नागरिक शान्ति के पर्याप्त प्रभावित नानारुम या भिड़ था। इस वंशग्रुप में प्रस्ताव का भी नाम था जो उपर दिये गए गुरुद्वारा के वंशग्रुप में यह महुआ मिलता-जुलता है। यह वंशग्रुप पर्याप्त अवलोकन अगर नहीं लाया गया है, पर इस संगमचंद वंशग्रुप के साथ जा नहीं। सुदास नहीं का ही दर्शन हम समय हमारे काम का है। हमलें उताना ही गलों पर दिया गया है—

| चंद्र       |
| गुफ्क   | जल्ल   |
| सीताचंद |
| वीरचंद |
| नरिचंद |
| रामचंदन |

विषुचंद उदयचंद रघुचंद उदयचंद देवचंद चंुदास

इन दोनों वंशावली में इतना अधिक समय नहीं कि दोनों एक दूसरे की सत्यता को पुलिस में खो दिये जा सकते हैं। दोनों में अंतर इतना थोड़ा है कि उसे हम स्वतंत्र-प्रतिष्ठ कहकर टाल सकते हैं। वह अंतर यज्ञ यज्ञ में ऐसा उपलब्ध करते हैं, न तो अधिक छाता है न उतने महत्त्व का। अतः हम नानारुम के वंशावली का पक्ष कुछ कहकर एटा नहीं सकते। सुदास के पूर्व पुस्तकों का वृत्त जानने में उससे भी सहायता लौट पड़ेगा।
(६.)

दोनों बंशावलीों से यह वात स्पष्ट प्रकट है कि सुरदास चन्द्र के वशजों में हैं। चंद्र व्रहमान्ते ये घृणित मन्त्रीराज के दरबार में रहते थे। मन्त्रीराज उनको मित्र; मंत्री, सलाह और हितैषी, सब कुछ समझते थे। सुरदास के दरबार को अपना मूल पुराण मानने से भी यही प्रचलित होता है कि वे व्रहमान्ते थे। वन्दीजनों की उत्कृष्टि के संबंध में शिवरसिंह संगर ने अपने सरोज में यहू कविता उद्देश्य किया है—

प्रथम विधाता ते प्रगट मए वन्दीजन,
पुनः पूयु यज्ञः प्रकाश सरसात है।
माने सूत सौनकन सुनत पुरान रेहे
यशा को वंशाने महासुख वरसात है।
चंद चौहान के, केदार गोरी साहुज के,
गंगा अकबर के वंशाने गुनगात है।

cकाव्य कैसे मास प्रजनास, धन माटन को,
लूटी घर जाको खुराको जिते जात है।

भाटों के प्रयुक्त यह से उत्पन्न होने की वात भी वहुत प्रसिद्ध है।
भाट लोग अपनी मित्रती वाणिज्यों में करते हैं। स्वयं सुरदास जी ने अपने को विग्रह (विग्रह पूर्ण जाग में को) कहा है। सन १८६१ की संसार की हिंदौग (५७१ १५६) में लिखा है कि वहमान्तो का भाषार-व्यवहार कान्त्यकुल, गौड़ी, अंगरेज वाणिज्यों से मिलता जुलता है।
भाटों में से जो लोग सुखम्यान हो जाये हैं और जिन्होंने भाटों का पेशा नहीं छोड़ा है उनमें से भी भाटों के से भाषार-व्यवहार पाये जाते हैं, यह

८ 'शिवरसिंह सरोज,' नवलकिशोर प्रेस, सन १६२६ पृ० ४०२।
+ 'शिवरसिंह सरोज,' के सं० १६३४ के संस्करण में यह छवि ४०१ पृष्ठ पर है और 'काव्य कैसे मास' के रास्त पर 'काग कैसे मास' पाठ है जो अधिक संगत जान पड़ता है—संपादक।
तो हम प्राप्ते प्राप्त न रहा है अपना समय मे जानते हैं। इसी तरह संभव तू भी, भगवान मे जाने वाले लोग उनमें सार्थक भाषण मामले रहे हैं। ऐसी ही पंजाब राज प्रभु भी हैं। परन्तु ये दे यजुर्वेद भार हैं। द्वारा इसमे कोई संदेह नहीं कि वे चंद्र के वर्णन ने।

सुदामजी के कहने के लिये चंद्र को प्रभुराज ने ज्ञाता तेज दिया था। सुन्नी देवीसागर का प्राप्त नहीं है कि चंद्र ज्ञाता तेज पंजाब का व्यालादेश प्राप्त हो जो प्रयवत जालन वर कहारधार है। यह नो मुखर करने का राजा नहीं वाला है कि पंजाब कुछ नम नहीं प्रभुराज के आधीन था। और तत्काल प्राप्ति के नाम के नम, तत्काल से विषय भूमि का व्यालादेश में रहना पाया जाता है। प्रभुराजनामाला में भी लिखा है कि चंद्र के पूर्व पुरुष पंजाब के रहने वाले है। नागर में उनका जन्म हुआ था। स्वयं चंद्र समय समय पर पंजाब जाता। वरने ये और एक बार वे जालन्य करने के मंदर में चंद्र हो गये थे। हो सकता है कि व्यालादेश पहले हो ले भाटों की भूमि हो रही है, यही जानकर प्राप्ते श्रीविकार में आने पर प्रभुराज ने उसे प्राप्ते भारमत्र चंद्र को दे दिया हो। कोई-कोई उनके पूर्व पुरुषों का माग के दे से भी गहना मानते हैं। यदि यह सत्य थी हो तो भी जो कुछ हम ऊपर कह प्राप्त हैं, उससे उसका विरोध नहीं हो सकता। बहुत काल तक माग हो से भारत के सात्राम का शासन होता था। माग के सत्रामों के यहाँ भाटों का रहना नियमानि है। हो सकता है भाटों के माग कहाने का यही कारण हो। पीछे जब गुरुं के हास के साथ माग के सात्राम का भी हास हो गया, तब समय है यहाँ के कुछ भाट नये विषयवाली धार्मिक आदावियों की धारा में इतर-उतर निकले हों जिसमे से कुछ पंजाब पहुँचे हो। इन्हीं पंजाब वालों में ले हो सकता है कि चंद्र के पूर्व पुरुष रहें हों।

8 प्रभुराजनामाला में चंद्र के पिता का नाम वेष दिया हुआ है पर राजा में दिया नाम विद्वान याथा नहीं।
( ११ )

सुरदास जी थे पद से पहले दिया गलत है कि चंद्र के बाहर जाने थे। नानूसार का वंदना भी यहीं ।

सुरदास के कविता अपने पूर्व पुराने गुरु चंद्रचंद का नाम दिया है। नव ते जेठे के सम्न में उनका कथा है कि चंद्र के छवि हाथ में उसे रात बना दिया था। वेश हो के सम्न में उनका कथा भी नहीं पड़ता है। नानूसार का वंदना की इन दो के सम्न में सीधा है। सुर को, यह भी चंद्र के दूसरे पुत्र के ही चंद्र में चला है, परन्तु उसका नाम गुरु चंद्र न परमार जल्ल बालाता है। गुरु-चंद्र उनके प्रभाव अन्यत्र जेठ का नाम है। चंद्र के पुत्रों में जल्ल है कवि प्रसिद्ध है। उन्होंने ध्वनि के बिना प्रसिद्ध यज्ञोदाताओ को व्यक्ति में पूरा किया था। मानूस होना है कि इसी ज्ञान कवि सुरदास के पुत्रों में यह नाम भाद-परमार में प्रसिद्ध हो गया। प्रतापुर ने इसे स्वीकृत-द्वार सान मकेते हैं। यह सका है कि जेठ का नाम जल्ल रहा हो जिसे चंद्र ने उन्होंने जीते जो ज्वालादिन्द्र ने दिया था।

यज्ञोदाताओ का धार जल जो संदर्भ मिलता है। उसकी भौतिक-सिकन्दर के विपरीत में बहुत कुछ मात्रा चल गुलाम है। मदरदोपंचायत गंगा-शंकर हीरारंथ प्रोचा उससे दर्शन घटनाओं तथा नंबरों को सजाव-लेलेंगे के आधार पर गजन दिया गया है। कम से कम यह तो सभी को माना है कि उसका थोड़ा ही सा तथ्य पंदक्रंत है। प्रकाश के राज काल में मदरदोपंचायत सरसों ने उसके विखरे हुए चरणों को एकत्र किया था। बहुत से राजपत्रों को ध्वनि कुल-प्रतिवेदा बदलाने का यह उच्च सौभाग्य मिला। इसीसे, कहते हैं कि इसमें प्रत्याशित वाही सामान्य था संज्ञी है, परंतु चंद्र के युगों में सम्पन्न रहनेवाला श्राप, इस प्रकार के प्रचारों की धरी रही में नहीं था सकता। वह भी नहीं कहता जा सकता कि भाद लोगों ने ध्वनि-प्रतिवेद चंद्रों का चंद्र के पुत्रों से सम्बन्ध लगाने के लिए कहर तक जोड़-तोड़ किया है। इस रासों के “ढूढ़तिवुच कवि चंद्र के” वाले कथन को न तोविजयुल ही गजल कह सकें हैं न विजयुल
सूरदास के अनुसार चन्द्र की दूसरी पीढ़ी में सीलचन्द हुए। नानूराम के अनुसार उनका नाम सीताचन्द्र था। लिपि के द्वारा 'ल' के 'ता' और 'ता' का 'ल' पढ़ा जाना असंभव नहीं। अतएव सीलचन्द्र और सीताचन्द्र एक ही है। यह चन्द्र के दूसरे पुत्र के पुत्र थे। इसमें सूरदास और नानूराम दोनों सहमत हैं। इन सीलचन्द्र का कुछ भी कृत्रिम झात नहीं है।

सीलचन्द्र के पुत्र वीरचन्द्र के समर्थन में सूर ने कहा है कि वह प्रदूषित रूप से प्रतापवान था और राज्यसमूह के कीर्तिसाली राजा हस्मीर के साथ खेला था। इससे पता चलता है कि वीरचन्द्र हस्मीर का वालसखा रहा होगा। वीरचन्द्र हस्मीर के वालसखा या मित्र थे अथवा उनके द्वारा में रहते थे, इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन दूसरा झात है कि एक मात्र जिसने हस्मीर के यशोगान में हस्मीरराजों की और हस्मीर काव्य की रचना की थी, उनका प्रतिपाद अवश्य था। परन्तु
(१३)

इसका नाम जो परमपरा में मानूस है शारंगधर है, चीरचंद नहीं। हो सकता है शारंगधर और चीरचंद एक ही व्यक्ति के दो नाम हों। यह भी हो सकता है कि चीरचंद यात्रेली नाम हो और शारंगधर काव्य का। कवियों के उपनाम यात्रेली नामों को फिर पूर्णता के साथ अपि स्वर्ग कर देते हैं, भूपण इसका खत्म हुद्दास्प उद्दास्प है। भूपण का यात्रेली नाम व्या था, वाज यह कोई नहीं जानता। प्रेमचन्द श्रागर प्राचीनकाल में होने दो श्रागप्राय नाम की शापद रही कोई जानना। परन्तु चीरचंद श्रागर शारंगधर दो व्यापक-श्वासन व्यक्ति भी है बनाए रखने हैं। जो हस्मीर के दुर्गार में रहे हैं। चीरचंद का समय दर दासल में संयु १५५७ के अरसापास होना चाहिए। इस संस्कर्ण में सूक्ष्मन श्लोकचँदन के साथ हस्मीर की पहली लड़बाड़ दुसे थी जिसमें हस्मीर ने उसे दराया था। किंतु श्लोकचँद निसर्द रूढ़िये ही साज बढ़ गया। इस दूसरी लड़बाड़ में यस्मीरी हस्मीर ने प्रत्युष्ट वीरता के साथ जड़ते हुए स्वर्ग-जाम किया।

चीरचंद के बाद, चंद्र-परंपरा में सूर ने हरिचंद का नाम लिया है। इसके उपर दुसे न कहकर, चंद्र में कहा है—"तातु वंग यात्रुप भो हरिचंद ग्राह विचमान।" धरात यह मानता होती है कि कीरचंद और हरिचंद के बीच के कुछ नाम छोड़ दिये गये हैं। शारंक में बागराय से चंद्र का सम्यंब स्थापित करते हुए, भी सूर ने इसी प्रकार के व्यक्ति का प्रयोग किया है—"तातु वंस प्रसंस में भो चंद्र चाह नवीन।" यहाँ पर यथा ही इसका चयन यह है कि चंद्र बागराय के उत्तर नहीं थे। इसी प्रकार हरिचंद और चीरचंद के संबंध में भी "तातु वंस" का दूसरा चयन नहीं हो सकता। परन्तु नानुसार हरिचंद को चीरचंद का पुत्र ही मानना है। यदि सूर के चचा के वचनों के व्यक्तिगत चिन्द, तो नहीं जानी, वर्णिके पुत्र भी चंद्रज ही है परन्तु ऐतिहासिक होते से यह ठीक नहीं जान पड़ता। इस हिसाब से सूरदास के पिता चीरचंद से तीसरी पीढ़ी में पड़ेंगे। सूरदास के पिता रामदास सं १६१५ में निरीक्ष रूप से चिन्हमान थे। चीरचंद का संवर्तु
१३५ म के यासपास रहना हम मान ही गृह्य हैं। शीघ्र के २६० वर्षों से तीन ही पीढ़ी हुईं होंगी। यह मर्म्य था ग्राममध्ये है। इस शीघ्र में वह से कम दस पीढ़ियाँ नो घरवश सातवी पड़ीं। ग्रामजन यही जान पाता है कि बीरचंद्र श्रीरिचन्द्र के बीच कई पीढ़ियों का सुर ने उलझ नहीं किया श्रीराम नानूरास का हरिचन्द्र को बीरचंद्र का पुजा कहना भी सरासर गलत है।

क्यों सुर ने इन शीघ्र की पीढ़ियों का उलझ नहीं किया, कोई भी इसका कारण नहीं बतला सकता। शार्मा में चंद्र को जानु यंगन किया गया का कारण था। अपने संग-परंपरा को सुर कितना ही पीढ़ी क्यों न ले जाते, पौराणिक व्यक्ति महाराज श्रीराम णत्तिम्न वेदाहारिक पुरुष के बीच कुछ न कुछ स्थान खाली रह ही जाता। चंद्र बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति भी हैं। उनके संग में उनसे पहले कोई इतना प्रसिद्ध नहीं हुआ, इसलिए श्रीराम ने चंद्र से अपनी संग-परंपरा का शास्त्र करता उचित समझा होगा। शायद चंद्र ही का नाम शुद्धास को परम्परा से मिला भी हो, उनसे पहले के श्रीराम किसी का नहीं। पर इस बिंदु के बादु 'तातु यंगन' कहकर बीघ्र के नाम छोड़ते कोई कारण नहीं माजुम पड़ता। अधिक से अधिक यही वात हो सकती है कि शुद्धास की इन बीघ्र के खोजों के नाम न शुद्धास रहें हैं।

हरिचंद्र का भी सुर ने 'मार्गत विलेखात' कहकर नाम लिया है। हरिचंद्र को किस प्रकार की क्षयति लाभ हुई थी, निर्मित रूप से नहीं कहा जा सकता। भाद चंद्रखुच कवि ही इस्सियों करते हैं। इसलिए श्रीराम यह समझके कि संभवत: काव्य-रचना के कारण ही उनकी क्षयति लाभ हुई हो तो अनुचित नहीं। हरिचंद्र नाम के दो पुराने कवियों का उल्लेख शिरवसाह संगर ने अपने सरोज में किया है। एक चरसाहेब श्रीराम दूसरे चरखारी चले। चरखारी चले हरिचंद्र बंदीजन थे। श्रीराम के राजा चुनावले के आर्क हैं। बंदीजन छोड़ने से हम अनुमान सकते हैं।
कि शायद येही सुरदास के द्वारा हैं, परन्तु चर्चारी के छस्साल बहुत चाहे के राजा माजुम देते हैं। चर्चाने वाले हरिचन्द्र किस जाति के थे, यह शिवसिंह ने नहीं लिखा है। उनका स्थान चर्चाना प्रज्ञक्षा हम चाहे की श्रीमयूर्ण रहे हैं। इस चाहे के लेकर उनका समव्यंच रामदास और सुरदास के साथ जगाया जा सकता है। शिवसिंह ने इसकी कविता का साथ दीया है। उसकी रचना एक कवि की सी नहीं जान पड़ती। काय्य-रंजित इस संवधि में किसी दृढ़ निर्णय पर नहीं पहुँचा सकती। अतः यह निर्णय-पर्यवेक्षक नहीं कहा जा सकता कि यह हरिचन्द्र और सुरदास के द्वारा हरिचन्द्र पुक ही थे या नहीं।

सुरदास ने अपने पिता का नाम नहीं लिखा है। आईने प्रकारी में सुरदास के पिता का नाम रामदास लिखा है। यो-यों हम आगे बढ़ते जायँगे तो यो-यों यह चाहे प्रधिकारिक स्पष्ट होती जानी कि आईने-प्रकारी के सुरदास हमारे चरित्रनायक ही है। अतः यह आईने प्रकारी के रामदास सुरदास जी के पिता थे, हमें यह चाहे पक्की जान पड़ती है। भारतेंदू हरिचन्द्र का अनुमान था कि उनका नाम रामचन्द्र रहा होगा। जिसे वंश्याओं ने अपनी रीति के अनुसार रामदास कर लिखा होगा।

नातूराम जी के वंशवृद्ध में उनका नाम लप्त रामचन्द्र दिया गया है। भारतेंदू जी के कथन से तो जान पड़ता है कि जैसे वीर वंश्याओं ने उनका नाम रामचन्द्र से रामदास कर दिया हो। परंतु वस्तुतः आईने प्रकारी को इस संवधि में और वंश्याओं का साथ देने की जस्ती नहीं थी। यदि

84 काल कमाल करान काल विसालन चाल चली है।
हाल विहालन ताल तमाल प्रबाल के वालक लाल लली है।
लोल विलोल कलोल ग्रंमोल लाल कपोल कलोल कली है।
बोलन बोल कंगाल डाल गलोल गलोल रतोल गली है।
—शिवसिंह 'सरोज' स० १६३४ संस्कृ ५० १६२२।
उनका नाम रामचंद्र रहा होगा न उन्होंने स्वच्छ ही उसे चढ़ा दिया होगा। इनके नाम के पहले भ्रुक्ष होनेवाले सल्ले से ग्रह इनकी धार्मिक प्रगति का ही योग हो तो समझना चाहिए कि ये स्वयं भक्त थे। स्वयं कार्य से, शायद पुत्रों की प्रकाज संतु के कारण, संवत 1617 से पहले ही ये चिंता से रहने लगे थे। शिवराज सेन ने अपने मरोज में इनका एक पद दिया है जिससे प्रकट होता है कि ये वैष्णव कौटिक्य के भक्त थे। भक वैष्णवों के नाम बहुधा दासांत हुआ ही करते हैं। शक-भाव के उद्देश्य होने पर इन्होंने अपना नाम रामचंद्र से चढ़कर रामदास रहा लिया होगा। कम से कम इन्हें अपनी अवस्था है जिसे यह परिवर्तन इनकी रूचि के प्रतुक्त देखा था।

बाबा रामदास असिद्द गयेया थे। अहिंसा संक्रायारे में उन्होंने श्री विभीं देवी में उनका नाम इससे नमन पर हैं। मुल्ला अरुकल काविल ने मुना-लिहिलत फलक में लिखा है कि रामदास सलीमशाह सूर के कलावंतों में से था। सूर खानदान के अलंकार होने पर चैर्म खाँ ने उसे अपने पाल रखा लिया था। राग में वह दूसरा तांतिस था। चैराम खाँ उसे तभी में से अर्थात् वह हमेशा उसे अपने पाल रखता था। और उसका गाना तुलकर उसके ब्राह्मण से चढ़ायारा यह निकलती थी। मालूम होता है कि संवत 1617 में जब चैराम खाँ श्रद्धा ने विद्वा करके विग्रह खड़ा हुआ था उस समय भी वह उसे के पाल था। मुल्ला अरुकल काविल ने इसी प्रकार में उसका नाम लिया है। उस समय यथार्थरे चैराम खाँ का खाना खाली था फिर भी रामदास का वह दुःख ख्याल रखता था कि उस तंत्र उसके पर भी उसने उसे एक लाख टके का रोक और माल दिया था। मालूम होता है कि चैराम खाँ ने वह सब धन रामदास को श्रद्धा से चुनह करके हवल के लिए रखना होते पर दिया होगा। यहुं मान से मालूम होता है कि सूरों के भी पहले रामदास, लोदी पठान पर गए थे। इस अवस्था की कुछ पुष्टि आगे चलकर हो जायगी।
चंसवाले हज के लिए सवाना हुआ था, पर जहाँ पर पढ़ने से पहले ही गुजरात में उसकी हृदया हो गई। ही सक्ता है कि इसी अर्थसर पर वेदर के प्रधान तथा श्रीमति को अश्रय से अपनी सेवा में ले लिया हो। इसी विजयी से खाला रामदास भी अश्रयी दरबार के गव्यों में नियुक्त हुए होंगे। सुनी देवीप्रसाद का प्रजनन है कि सवं १६९५ में उन्हें अश्रय से अपनी नौकरी में ले लिया होगा और सवं १६९५-३० के लगभग उनका देहांत हुआ होगा। ३ जो सबथा सामना है। रामदास चारहर दीवकनीची हुए। याने सं १५२२ में हमने उनकी अवस्था ४४ वर्ष की मानी है। मृत्यु के समय उनकी अवस्था ६० के लगभग रही होगी।

पुराण जी ने अपने पिता का पहले आगे और फिर गोपाचल में रहना कहा है। गोपाचल गोरी गोपाल्दी ग्वालियर के पुराने नाम हैं। पुरानी नजालेलों में ग्वालियर का उल्लेख इन्हीं नामों से हुआ है। ग्वालियर की अर्थों में भी रामदास को ग्वालियर ही लिया है। रामदास का गर्व्या होना भी उनके ग्वालियर-निवासी होने के प्रमुख है। मात्र होता है कि ग्वालियर उस समय गाण-कला का छापा केन्द्र था। राजा और वीरकल के मजलिस की वारिफ करते हुए अश्रय के दरबारी कवि प्रसिद्ध गंग ने कहा था कि ग्वालियर से गीत उठकर वहीं आ गया है। इससे स्पष्ट है कि उस समय ग्वालियर संगीत के लिए प्रसिद्ध था। लानसेन भी ग्वालियर निवासी ही थे। चहरे के तकालीन शेख सुहमद गौर के संबंध में कहा जाता है कि वे तन्त्र विश्वास में देवीप्रसाद, पृ० ३४, ४५।

| ऐसीं मजलिस तेरी देखिं राजा वीरवर, ।
| गंग कहें गूंगी हैके रहै है गिरा गरै ।
| महि रहो मागवा, गीत रहो ग्वालियर,
| गोरा रहो गोरता ग्राम रहूँ ग्राम रहै ग्राम। ।


इतने निपुण थे कि बिना सोंगे ही लोग उनके अनुष्ठान में गायनाचार्य हो जाते थे। कहने हैं उनके तानसेन की जीम पर जीम लगा देने से ही तानसेन श्रद्धालुगम गवेया हो गया था। केवल मुंतविष्णु तवारीह के लेखक सुमा श्रीनगरजादिर का देश रामदास के व्यवहार निवासी होने के कुछ विरुद्ध सा जाता हैं। उसने रामदास को लखनवी लिखा है। परन्तु श्रासल में यह भी गवाहियार के विरुद्ध नहीं जाता। सुना का रामदास को लखनवी कहना इतना ही सुविधा करता है कि यह सूरों के यहाँ घाने से पहले लखनज में रहता था। संभव है कि जैसा सुंगी देवीप्रसाद का मत है, वातर के लोकियों को चुटकारा देने पर, रामदास भी अपने श्रावंद्राद के लाभ पूर्व की ओर भागे हैं। और पूर्वस्थ पठानों की शरण में आये हैं। और यहाँ से सूरों के साथ फिर दिल्ली गये हों। वैसे भी गायनाचार्यों श्राव भरों की फिरती वृत्ति होती है। हो सकता है कि पूर्वोत्तर फिरते ही लखनज पहुँच गये हैं। और कुछ दिन यहाँ रहा है जिससे सुना ने उन्हें लखनवी सम्मान लिया हो। सुरदास के कथन से मालूम होता है कि चीरता भी रामदास के गुणों में से एक थी। सुर ने अपने विनो को सप्त शहरों में बीर लिखा है। वैसे ही काम का उससे जो प्रमाण प्रेम था, हो सकता है कि उसमें उसकी चीरता का भी हाथ रहा हो। श्रावंद्रा यह भी हो सकता है कि रामदास ने भी वातर के विरुद्ध लड़ाई में योग दिया हो, जिससे उनका पूर्व की तरफ भागना और भी संभव हो जाता है।

वासा रामदास कोई गवेया ही नहीं थे, कवि भी थे। उन्होंने कुछ समवन्धी काव्य-रचना का अपने पुत्र की मार्ग दिखाया था। शिवसिंह सेंगर ने अपने सरोज में उनका नीचे लिखा हुशा पद दिया है।

हमपर यह हि गई वो वाजन।
ले डारे जसुदा के श्रापे जे तुम कोरे भाजन।
दुरी वात करि देत प्रणाल तव नेवहूँ भ्राईं लाजन।
रामदास प्रनुँ, दुरे मक्वम मैं प्राणग मानी गाजन।

प्रत: हमारा यही निकाय है कि इन्हीं रामदास के प्रकाश वृक्ष का जन्म हुआ था। वृक्ष के घनिष्ठ प्रतिकार रामदास फे:गुप्ताचन्द्र, उदारप्र, 
रुपचान्द्र, उदिचान्द्र, देवचान्द्र प्रथोपचान्द्र भोर सुरजचान्द्र सात लवके थे।
नानुराम के घनिष्ठ प्र:। नानुराम के वंशगृह में प्रथोपचान्द्र का नाम नहीं है। शेष भाइयों के नामों में भी थोड़ा प्रतांत है। उसमें गुप्तचान्द्र

क '-सरोज', पृ. २०२।

+ ये सूरदास, प्रत्यक्षपी सूरदास न होकर सूरदास मदनमोहन वे, ऐसा भी कुछ विवादानो का विचार है। भोर प्रबन्धने प्रकारी 
मुन्ततिविद्वारिक भार्दि क्रियों में इन्हीं सूरदास का उल्लेख है।
इस संबंध में क.० दीनदयालुगुप्त का निपकय विशेष महत्वपूर्ण 
है भोर यहाँ उद्वृत्त किया जाता है:

प्रबन्धने प्रकारी, मुन्तरिप्रिवज्ञारिक भोर मुन्तिवियात प्रबलपनजल 
के व्यक्तित्वों पर विचार करने से हमें शांत होता है कि तीनों में 
एक ही सूरदास का उल्लेख है जो व्याप्तियाँ निवाली और वाच को 
लक्षात्म में श्राकर वसनवाले रामदास का पृष्ठ है। दोनों वाप- 
चाँदों का प्रकार के वर्षाम से सम्बन्ध था। प्रबलपनजल के ऐसे 
प्रकार के वर्षाम से हमें शांत होता है कि सूरदास वादशाह का कर्मचारी भी था। उपर धारण के श्राकर का प्रकार वादशाह से एक वार मेंट का उल्लेख 
62 वेंवाल की बातों में भी है। परन्तु उस मेंट के व्यक्तित्व से शांत 
होता है कि सूरदास संसारिक, वेंवाल से विश्व, वर्षाम के प्रलोभन से 
दूर, एक निर्माण शक्त हैं, प्रकार के लाल प्रयाल करने पर सी सूरदास 
ने प्रकार से यही मांगा, 'श्राज पाचे हमको कहो हें, फेरी मत बुलाईयो 
ोर मांसों कहूँ मिलियो मति।,' जो व्यक्ति ऐसा त्यागी है वह प्रकार
के स्थान पर विष्णुचन्द्र, उद्दारचन्द्र के स्थान पर उद्दरचन्द्र और गुदिचन्द्र के स्थान पर युद्धचन्द्र हैं। परंतु मे शानदार नायकों में इस प्राकृति का परिचय हो जाता कोई बड़ी बात नहीं है। सुरदास जी ने अपने भाईयों को 'महाभाष गंभीर' कहा हैं। वे झुंझुन शाह के सेवक थे और उनके लिए जड़ते हुए युद्ध में काम थाये। सुरदास को अपने भाईयों के मरते से बड़ा शोक हुआ। संपत्ति होने से लड़ाई में भाग न ले सकने के कारण शत्रु से चेतना न ले सकने का उन्हें बड़ा दुःख था। यह चौक उनके दिल पर भवन काल तक चली रही। यहाँ तक कि भगवान से साधारण होने पर उन्होंने जो चर्चान मांगे थे, उनमें से एक नग्नता का भी था। किन्तु शत्रु के साथ यह लड़ाई हुई थी, तब हुई थी, ये बातें आगे चलकर सम्पूर्ण होती जातीं थीं।

सुरदास का जन्म कह और कहा हुआ था, साहित्य नाहरी वाले पद में इस विषय पर कुछ नहीं कहा है। परन्तु उपलब्ध सामग्री के आधार पर इस विषय में कुछ अनुमान किया जा सकता है। सुरदास अपने पिता के सातवें पुत्र थे। उनके तीन भाई। इतनी छोटी श्रवस्ती के थे कि युद्ध में भाग ने ले सकते थे। सुरदास को भी इस वात का दुःख था कि मैं युद्ध में भाग ने ले सका। सी-से वे अपने की मंद और का राजकर्मचारी और दरबारी बयों होगा; लेककि का अनुमान है कि उपर का वृत्तांत भवतमाल के छप्पन, १२६८ में दिये हुए श्रकवर के राजकर्मचारी लखनऊ के पास स्थित संडलेस स्थान में अभिशिका, सहवादी मदनमोहन सुरदास से संबंध रखता है।

'इस विषय का निकाय यही है कि उन्होंने श्रकवरी, मुसलिम-उत्तराखंडी और मुख्यालयबक्कलों में अष्टद्राघ के भवतवर सुरदास का कोई वृत्तांत नहीं दिया है।

देखिये 'अष्टद्राघ और वल्लभ संप्रदाय', माग. १, प्रो. १५२।

—सम्पादिक
निकम्मा (मंड निकाम) समझने थे। उनके युग में भाग न ले सकने का कारण उनकी कम इज़ नहीं थी, विशिष्ट उनका प्रयाग्य था—‘रो मुराद-चंद्र रंग के हीन भर्य होकर।’ इसके मानमा होगा है कि गांगे वे घंटे न होने तो युग में भाग ले सकते। प्रागर यह भी समझने कि कोई उसके शांति में कुछ छोटी चयनितावली भी बतलाने के लिए लाने का दृष्ट्योक्त हो सकता है। तो भी यह मानना ही पड़ेगा कि विकृत ही वालक के मन में यह भाव नहीं उठ सकता। प्रसन्न मुख्य के शुरू में उनके (‘कहाँ दिशु मुक मायूल जो चाट ’) ध्यान को ‘शिशु’ कहलाने से वो गिरे शिशु नहीं उठाने लगने। परमा मा सबका पिता है। वह चाहे जिन्हें कुछ को भी शिशु कह सकता है। ध्यान को परमामा का ‘वालसुत’ समझने में भी को पुरुष स्वात्मता भी मिलता है, दस्ती में उसे ध्यान समाध्य दिया दिए हैं। इसी से उल्लसदासी ने रामचंद्र से कहलाया है—

मेरे प्रीत तनय सम अभानी। वालका गुरु सम दास प्रभानी।

मन्भर जु मानहि तज सकल भर्यरा।

करों सदा तिनके रूपाराई। जिमी वालकाहि राम महताराई।

यहाँ पर कुछ का ‘शिशु’ भी कुछ है। हमी चाव का चोक है। इन सब वालों की ध्यान में स्थान प्रागर हम मानें कि सुरदास इस समय जवानी में कुछ रख उके तो अनुष्ठित न होगा। इस समय इसकी प्रवत्स्या २० के लगभग रही होगी।

प्रागर यहूदि हस इस थालाई का जिसमें उनके भाई काम आये थे, ढेक-ढेक समय मालुस हो जाय तो हम उनके जन्म के ज्ञानस संसूच्य का भी अनुभव जगा सकने। हम देख उके हैं कि रामदास स्वारम-गानद के कलांबंगों में से थे। इससे पहला लघु यहाँ होता है कि इनकी को नींवत में इनके लड़के भी रहे होंगे। प्रागर यह भाव हो तो यह लड़के सर्वत्र १६१२ की होनी चाहिए। जब ‘दुस्माू’ से सिर से सूरू से दिल्ली का राज छिना। परन्तु यह श्रीसर महत्य है, क्योंकि 'सुरदास जी का
(२२)

इससे पहले ही चलमाचार्य जी का उदाहरण होना चौरासी की बात के पाया जाता है। संवत् १५५७ में चलमाचार्य जी की का गोलोकयास हो चुका था। निस समय सुरदास जी ने गुड़ घाट पर चलमाचार्य जी की शिंखता स्वीकार की, उस समय तक वे काफी प्रसिद्ध पा गए थे; बहुत से लोग उनके लेखक हो गये थे। इससे स्पष्ट है कि सुरदास १५५७ से पहले ही चिरक हो गये होंगे। उनकी विशेषता का विवेक कारण लड़के में उनके सब भादृष्यों का एक साथ मारा जाना ही हो सकता है। यह लड़के हमारे श्राद्ध और संकरे के बीच थी। संवत् १६५२ की लड़के नहीं हो सकती, १५७७ से पहले की कोई दूसरी लड़के होगी। संवत १५७७ से पहले का सबसे प्रसिद्ध युद्ध पामीपत का पहला युद्ध है जो संवत् १५७३ में हुआ था और जिसमें बाहर ने दृष्टान्त लोदी पर विजय पकाया (लोदी) पठान वंश का ग्राम और मुगल राजपराक युद्ध की भारत में स्थापना की थी। हो सकता है कि यावा रामदास के छः लड़के इसी युद्ध में काम आये हों। अनुमान यह होता है कि सुरदास के प्रतिष्ठित होने के पहले रामदास और उनके छः लड़के लोदीयों की नौकरी में थे। यदि इस समय सुरदास की शान्त २० वर्ष की रही हो जांता कि हम सान जुके हैं तो लगभग संवत् १५६३ में उनका जन्म हुआ होगा।

सुरदास के जन्म के समय उनके बिस्तर की ख्वाबशा २७ वर्ष की रही होगी। संवत् १५७३ में रामदास के साथ लड़के विवाह थे। एक के बाद दूसरे भाई की उड़ में कम से कम छातर एक वर्ष का हो सकता है। श्राद्ध रामदास के लड़कों में भी यही अन्तर माने—इससे अधिक अंतर मानने से रामदास की दृष्टि छोड़ गई हो जाती है जो गप-गीता में ही संभव है—तो उस समय सबसे वड़े की ख्वाबशा २७ वर्ष की रही होगी। श्राद्ध बीस वर्ष की ख्वाबशा में पहले लड़के का जन्म मानने तो संवत् १५७३ में रामदास की ख्वाबशा संतालीस की रही होगी। इसमें से सुरदास की उग्र के २० वर्ष निकाल देने से संवत् १५६३ में
विश सचम रामदास की माताम चर्च की प्रवत्ता थी खुदास का जन्म छुपा होगा। मातु स्त्रोत होता है कि खुदास की माता उनके जन्म के बाद जितना दिन तक जीवित नहीं रही।

खुदास का जन्म कहा हुआ, इसका तौर पर उत्तर हो चुका। यदि कहाँ का उत्तर है तो उत्तर छोड़ दिना चाहिए। अपने पिता का अपने पिता और बाद को गोपाल ग्राम में रहना खुदास ने स्वयं कहा है। हम जानते हैं कि रामदास ग्राम स्थानों में भी रहे हैं, परंतु खुदास ने उनका जितना नहीं किया। इसके पता पलटा है कि रामदास ने गोपाल में कुछ जायदाद जोड़ ली थी, जिससे चाहे कहीं भी रहने पर गोपाल ही उनका वास्तविक स्थान समझा जाता था। यथिक सम्भव यही है कि गोपाल ग्राम में खुदास और उनके माता का जन्म हुआ हो। चौराही वंशजों की लार्वा की शक्ति में दुनका जन्मस्थान दिल्ली के पास का कोई सत्यी गाँव बतलाया गया है, जो सोत नहीं जान पड़ता। दिल्ली के नजदीक सत्यी नाम का कोई गाँव नहीं है। कुछ लोग स्थिति को उनका जन्मस्थान मानते हैं, परंतु दुनका भी कोई प्रमाण नहीं है। श्रद्धालु गोपाल ग्राम में रहने जन्मस्थान मानना यथिक सुझाव देते हैं। वाद राधापदास गोपाल को मजे में दुनके का प्रश्न करते हैं, परंतु जैसा दिखा तत्काल जा जुका है यदि गोपाल स्यालियर के प्रतिक कोई दूसरा स्थान नहीं है।

अनुमान से मातुस्त्र चाहिए है कि होटी सत्यता में गोपाल ग्राम में खुदास ने अपने पिता से मान-पिया सत्यी थी। जब रामदास शाही सम्बार में गये तो शाही फुजीयों को भी उन्होंने शाही की नौकरी में लगा लिया परंतु खुदास को ग्रंथा होने के कारण घर ही छोड़ गये होंगे।

खुदास के ग्रंथा होने में कोई संदेह नहीं। इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं ही किया है। उनके श्रवं होने के कारण झोर, खाजगल सब बांधे सूर कहलाते हैं। परंतु ग्रंथा यह उठता है कि कैसा वे जन्मांत्र वे ध्यानवाला चाह को ग्रंथा हुए? बहुत से लोगों का मत है कि 'जिस्र' प्रकार उन्होंने
रंग तथा लोम द्वारा पदार्थों का वर्णन किया है, उसे देखने हुए यह नहीं कहा जा सकता कि इन चीजों को उन्होंने स्वयं नहीं देखा था। जिन्होंने उन चीजों को अपनी गाँवों से न देखा हो; वे ऐसा सुन्दर और यथार्थतः वर्णन कर नहीं सकते। अतएव अवश्य ही वे जन्माध्य नहीं थे।

लूट से बहुत से जीव पूरे हैं जिनकी एक इंदिरिय से, कोई विपभुव पूर्ण होते हैं। मछली एक ही इंदिरिय से देखती तथा सुनती है। द्वारका की जब एक इंदिरिय व्यर्थ हो जाती है तो दूसरी इंदिरियों परिधिक मंचू को जाती है। और व्यर्थ हुई इंदिरिय का बहुत कुछ काम उनके हारा होने लगता है। अंधं को तत्प्रत्यु व्यर्थ ही नहीं कहते। यह भी अवश्यक नहीं है कि सूर के व्यर्थों से जो चित्र हमारी प्रतिस्पृहा में आते हैं और वही सूर की प्रतिस्पृहा की गाँवों में भी आते रहे होंगे। गाँवों की माया विचित्र है। उनके एक ही वस्तु के घोटक निकले पर भी भिक्षु-भिक्षु मनुष्यों के हृदयों में उन एक वस्तु के घोटक गाँव से भिक्षु-भिक्षु भावों का उद्‌घात होता है। 'गाथा' गाँव को सुनकर, एक बहारी, एक क्रूःक तथा एक दूसरे पीने-पीने रहस्य के हृदय में अलग-अलग भावों का उद्‌घात होता है, यथाप्रय सब उससे घटना जंतु-विशेष का ही संकेत हैं। फिर यह भी वात नहीं कि किसी वस्तु के विचित्र में कोई भावना बनाने के लिए उसका देखना अवश्यक ही हो। कालपनिक भावना भी सुनुपर बना सकता है। इस भावना के हमारे प्रतिस्पृहा गलत होने से स्थिति में कोई अतर नहीं बदला। और वह भी वात नहीं कि गाँवों देखकर जो भावना की वस्तु के विचित्र में हमारे मत में होती है, वह सही हो। सूर ने परंपरा से वस्तुओं का वर्णन सुना उनको बिना देखे ही उनके संबन्ध में उनके हृदय में कोई भावना विशेष उद्देश्य हुई। यद्यपि तथ्य से वह भावना की विशेष प्रतिस्पृहा ही दूर क्यों नहीं, किन्तु सूर को मत्त रहने के लिए वही काफी है। ऐसी भावनाओं से प्रतिस्पृहा होकर जब सूर स्वयं वर्णन करने वेले हैं तो हमारे खूब उठने में कोई वाधा नहीं
पड़ती, प्रशंसा की हम उनके शब्दों से यही शर्म श्रद्धा प्रकट है जो उनसे सामान्यजातियों ने जिया जाता है। घर तथा से उनकी साधारण मायना में जो घटना होता है, यह इसी दहशत में नहीं धारा। परंतु के सुंदर पालन घर उनकी प्रगति के लिए हमें कुम्हत होना है। अतएव सुर के जन्म से ही सुर होने के विषय जो प्रभाव दिया जाता है, उसके ठहरने को कोई धार्मिक नहीं। अतः संभव यही जान पड़ता है कि वे जनंताधी थे।

चेताराम

अपनी जीवन की पहली घटना जिसका सुर ने उड़ाख दिया है, वह उनका कुंड में निर्माण है। सुंदर पद्मका का निन्दामान है कि यह घटना उस शान्तिवाद गर्दी की होगी जिसमें उनके छायां भाद्री मारे गये थे। हुद के वाद मह जगह गादवड़ गौर भगवाद सची होगी। ऐसे ही प्रवर्तक जिसमें ब्रते सुरद्वार भी भागने का प्रयत्न करते हुए कुंड में निर पड़े होंगे। सुरद्वार जी स्वयं कहते हैं कि कुंड में से उनके रोने-चिंताने की आवाज किसी ने नहीं सुनी। सातवें दिन कृप्या ने स्वयं ही आकर उनका उद्दार किया। मालूम होता है कि कुंड भी घंटा था; तब उसमें पानी भरा भी हो तो वह धुल कम, नहीं तो दुः सत-दिन तक कुंड में पड़े रहने पर उनके उत्पन बचे न रह सकते थे। किसी का छोटे दिन तक उनके रोने-चिंताने की आवाज को न सुनना, इस तात को चुनना में दृढ़ होता है कि कुंड भी वेकाम था और लोगों का उच्च शाना-जाना कम होता था। वह भी हो सकता है कि जोग उस भगवाद में अपनी ही रथा में छुताने
( २६ )

व्यस्त थे कि तूसरों के रोन-चिंतन की धार प्रियों का प्रयास जा ही नहीं सकता था। भावना की सुभूत के शोक शार प्रयन प्रयत्न प्रमाणण-वचन ने उन्हें प्रत्यय भाव से परमाणु का प्राप्तत्व ली। उनकी हार्दिक प्रायर्वन व्यत्य नहीं गई। श्रीराम ने सूर को केवल कुछ से बाहर ही नहीं नकाल दिया, उनकी आराम भी लोक दूर और उच्छानुसार चर माँगने को भी कहा। सुरदास ने तीन वर मांगे।

पूरा तो यह कि श्राव का नाश हो जाय, दूसरा यह कि सुभूत प्रयत्न के साथ मिले, धार तीसरा यह कि जिन ग्राहों से आपने दूर्शन किये हैं उनसे धार किसी का रूप न देखा। भगवान् ने दुर्दास कहा और श्रावसायन दिखा कि दुर्शन के प्रायो मुझ से तुम्हारे श्राव का नाश होगा। तु संपूर्ण विद्याओं का घर होगा। मेरा नाम उन्हीं सुरदास और सुरदास धार और रात के श्रावियरू पहर में श्राव ताता हो गये।

सुरदासजी का कुंज के द्वारा उद्धार होना लोक में श्राव है। कहते हैं कि जब कुंज ने सूर का हाथ पकड़कर उन्हें कुंज से बाहर निकाला तो उनके कर के कोमल स्पर्श से ही वे जान गये कि भगवान् के द्वारा उनका उद्धार हो रहा है। इसलिए सूर ने चलहुट्टक उनका हाथ पकड़ लिया। जब भगवान् अपना हाथ छुटाकर जाने लगे तो सुरदास ने कहा——

कर छुटकारा जात ही, निवल जानि कर मोहि।
हिरदय सो जब जाहुगे, मरद वदांगो तोहि।
इसपर भगवान् ने प्रसन्न होकर उनकी ग्राहों कोल दूर, जिससे उनकी दृश्य मात्र हुआ। भगवान् के दृश्य पाने का पहले खुद ने अपनी सूर सारावली से भी किया है——

“दृश्य दियो कृपा ककिर मोहन, तें दियो वदांग।”
कहना वे होगा कि वे श्राव जिसके विनाश का सूर ने कुंज से छरराम माँगा था नुकसान ही था। जैसा हम ऊपर दिखाया चुके हैं वाचर
के सुगलों से ही लड़कर सूरदास के भाई मरे थे। कुष्ण की भविष्यवाणी प्राप्त चलकर पूरी हुई थी। दृष्टियों के वाहक में प्रवाहित न चलकर पूरी हुई थी। वाणों राधा कुमार दास ने इसपर शान्ता की है कि वाण रामदास तो अर्कारी दर्शार में नौकर थे, सुगल उनके दुर्मव कैसे हो सकते हैं? इसका समाधान यही है कि जिस समय की यह बस्ता है उस समय तक न तो वाण रामदास या सूरदास अर्कारी दर्शार में नौकर ही थे और न इस वाण का भ्याल ही रहा होगा कि वाण चलकर ऐसा भी होगा। उस समय तो उनके शास्त्र-द्वाता पदार्थों के शत्रु होने के कारण सुगल उनके भी शत्रु थे।

जिन शहीदों के कारण उनका शास्त्र-द्वाता नष्ट हो गया, उनके भाइयों को कृप्या दें, स्वयं उनको दूत की यात्रा सतनी पी, उनके नाश की कामना करना, तो फाला सुरदास ने स्वयं कहा है, स्वाभाविक (‘सुभाष’) ही है। परंतु साहारा आदमी की समस्या में यह जरा कठिनता ने राता है कि उन्होंने आँखों से बंचित होना क्यों चाहा। भगवान ने अत्यंत दृष्टि होकर जिस नियमत को उन्हें बरामद था उसे यों खोल देना कब इस्तिमाल का काम नहीं जान पड़ता। एक् इस प्रकार, आँखों के सामने इस विश्व जगत के दर्शन को जिन्हें उन्होंने कभी नहीं देखा था। उद्देश्य चेत चमका लो नहीं गये थे, परंतु सूरदास जी की नाप-जोख हमें साहारा पैमाने से नहीं करनी चाहिए। उनकी विरक्त पूर्णता की पहुँच जुकी थी, वे परमात्मा का वर्णन कर लुके थे। कुष्ण की जिस मंजुल मूर्ति के उन्होंने दर्शन किये थे वही उनके हंदास में बसी रहे, उनके अतिरिक्त और कोई रूप उन्होंने न पा सके, यही सोचकर सूरदास ने आँखों का बप्पियार किया होगा। जब रात में बन्द हो जाया तब कोई उद्धोन केले? इस घटना पर किसी कवि ने क्या ही सृंग और आनंदी बात की है—
तन समुद्र सम गूंथ को, गीत भले नग नायत।
हरि मुक्ताखण्ड परन श्री, मूंदन गण करतान।
इस सारी घटना को इस प्रारम्भिक रूप में भी के साथ नहीं है। यह संसार कृपावत है जिसका शुभ मंगल सुप्रसार ने गहन विषय दर्शने पर
हरि माधूर हुआ। यही उनका कुंड़ में पड़ना है। कुंड़ की सरमा में
जाकर उन्हें इस संसारिक विषय से चुटकारा मिला। कुंड़ के प्रेम ने
संसारिक दुःख के लिए स्थान ही न रहने दिया। यह कुंड़ का उनकी
कुंड़ से निकाजाना हुआ। कुंड़ ने उनके श्री-नेत्र सोल दिये। श्री-
नेद्रों से ही परमात्मा के परमार्थरूप में दर्शन हो न मानने हैं। वे ऐसी
श्रीके हैं जिनसे परमात्मा का ही रूप दिखाई देता है, श्रीर किसी का
नहीं। इसपर भी शुरुदार का यह पर मोहना कि जिन श्रीके से राधाराम
के दर्शन किये हैं। उनके श्रीर किसी का रूप न देखूँ, निर्भरक नहीं हैं।
इससे उनकी तत्त्वनता मलकती है। श्रीर ऐसा भारतेन्दु जी ने लिखा
है वे श्रीर जिनका शुभ मंगल नाय चाहते थे, काम, कोंध, लोभ, मोह,
भूत, मल्सर वे पड़पूर हैं जिनका दृष्टिका के प्रवध भास्कर्य वर्समार्थ
ने दर्शन चकर नाय दिया।

निरिच्छ रूप से नहीं कह सकते कि इस घटना को किस रूप में
लेना ठीक है। भारतेन्दु जी ने श्रीके संवध में दोनों रूप लिखे हैं और
वातु राधाकृष्ण दास ने वहाँ पर केवल श्रीलौकिक रूप ही को ठीक माना
है। परन्तु श्रीर श्रीलौकिक रूप में ही तो सारी घटना को लेना चाहिए।
श्रीर में समस्त हैं कि सूर्य का सगुणवादी भक्त होना श्रीलौकिक पत्त के
प्रागार को कमजोर कर देता है। सगुणवादी भक्त भगवान के दर्शन
चर्म-चुड़ाबे से ही करना चाहता है। श्रीतव श्रीलौकिक पत्त ही ठीक
जान पड़ता है।

६ दिवसिन्ह संगर इस दोनों को सूर्य का ही बताते हैं—
सरोजा, पृ० ३२०।
ढीला

इस पटना के बाद जान पड़ता है कि, सुरदास गाज़बाट पर दांवर रखने लगे। गठबंधन प्रागार और सहुरा के दोनों ही दीवारीय हैं। वहाँ उनका महत्वपूर्ण बहुत जोड़े फ़ैले लगे। उनके भागवाद्यान की कथा भी लोगों में फैली होती। उनकी बागन को स्थान भी देखने का नायक सिला होगा। इससे लोगों के हृदय में उनके प्रति अभिभावक खूब उमड़ा होगा। उनकी सीमा-सीमा का भी उनकी प्रतिभा में काफी भाग रहा होगा। जन्मजात विश्वास जिसमें होती है, उनमें जनसाधारण रसायन का कुछ विशेषित देखें ही हैं। इस प्रकार लोग बढ़ी आश्चर्य से उनके चेहरे होने लगे। कुछ समय पूर्व जब चललाचायर्जी गठबंधन थे उस समय यह लोग सुरदासजी के सेवक हो गए थे; इस साथ का उल्लेख चौरसी वेंचारों की वातां में है।

श्री चललाचायर्जी दिनियोऽ-उपद्धार थे। पंद्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में चेकवाय थम का जो दासदल देश भर में उसकर बढ़ा था, उसके भाग्य प्रतिक्रिया में चललाचार्जी जी भी एक थे। इनका जन्म सन 1535 वेशाप क्रम्या 11 को और गोलक्षेत्र संतु 1547 दासदल शुक्ल 3 को हुआ। ये वही दिव्याज पवित्र थे, बेद-शास्त्र का धाम इनका धाम था। दर्शन पर में इन्होंने शुद्धांत सिद्धान्त चलाया और उप
सना पत्र में पुष्पिवाद। यहाँ सिद्धांत का प्रनिपातन करने हुए उन्होंने बेदांत सूत्र पर यहाँ श्रावण भाष्य रचा था। ॥४॥ द्रविध से दिनिजय करते हुए चल्लभाचार्य जी उठकर में आये और प्रयाग के पास कदेलाल गाँव में बस गये। फिर वज में आकर श्रीनाथजी के मंदिर की स्थापना की श्रीरंग यहाँ मत का प्रचार किया। वीर-श्रीन में आए श्रद्धेल चले जाय करते थे। उनके बड़े पुत्र गोस्वामी गोपीनाथ जी का जन्म यहाँ हुआ था। श्रद्धेल से वज को जाते हुए ही एक समय वे गड्डराट में उधरे थे। जिसका हम ऊपर जिक कर चुके हैं। सुरदासजी उस समय यहाँ रहते थे। वे चल्लभाचार्य जो का यह सुन चुके थे। जब उन्होंने सुना कि चल्लभाचार्य जी यहाँ हैं वो उन्हें भी उनका सलाम करने की इच्छा हुई। इससे मिलने का ठीक सात निर्णय करने के लिए उन्होंने यहाँ सेवक चल्लभाचार्यजी के स्थान पर भेजा। जिस समय वह यहाँ पहुँचा उस समय वे भोजन बना रहे थे। सेवक ने पहले ही से उसे समझा रखा था। वह कुछ दूर पर जाकर बैठ रहा। पाक सिद्ध होने पर जब महाराजा ने ढाकर जी को भोग लगाकर अनोखी करके महात्माध्यम पाया और गद्दी पर श्रासन महाराज निर्यात किया तथा जब उनका भक्त-समाज उड़ गया तो इतने पाकर सूरदास जी भी दूर्शनों के लिए पहुँचे। चल्ल-भाचार्यजीने उन्हें विठलाया और भक्तिवचन वर्णन करने को कहा। सूरदास जी ने यह पद गाया—

हीं हरि सव पतितन को नायक।
को कर सकै वर्तरित मेरी इतने नि को लायक
जो तुम सरामेलि सौं कीनी जो पाती लिखि पाएँ
हय विश्वास मलो जिय श्रद्धेल और पतित वृलाओँ

४ वेदांतमूल पर चल्लभाचार्य-द्वारा रचा गया भाष्य अग्निभाष्य है
जिसमें शुद्धाहित का दार्शनिक सिद्धांत प्रतिपादित हुआ है—संपादक।
गाणा मुनरर पल्लभाचायत ती ने यहा घुर, पूर होरर वसों हृणा विचिमाते हों। भगवान प्रीं लोजा का पर्यान एरो, गीदिशाने की प्राथम हो न पद नामगी। मुर्द्राम ती ने नवाप दिया, मदराज, सुमं गा पुप माण सरी नहीं है। तव पल्लभाचार्य तीने पहरा, धर्मान स्तान करके प्राची, हम गुरु में पवायेंगे। तब मुर्द्राम स्तान परों प्राची नो पल्लभाचार्य ती ने उन्हें भगवान का आवश्य परणा। फिर शर्मण की हिरी हुई जिमसे मुर्द्राम जी ने गुरु की नेता में धर्म प्राप्त को परम्परा किया।

महत्त्वां द्वारसं पल्लभाचार्य ती ने प्रपनी सृष्टि भागवन की श्रीसा के प्रमर्थ संघ की अनुमानिकिता पदी। जिमसे अग्रवालजी का होर मंथत है। उसका पहला स्वतंत्र द्वारसं प्रमरार है——

नमामि द्रविष्ट धेरे लोजा धरोधिम भावितमु।
लक्ष्मी सहस्र नीलामि: नंदवमान कलामिधिमु॥
इस प्रकार सुरद्वासजी चर्चा संपन्न थी में दीया दिया। चौरासी वेदनाचार की वातों के अनुसार इससे उनके सब दोष दूर हो गये, उन्हें नवधा भक्त सिद्ध हो गई, उनके हृदय में भगवान की संपूर्ण लोहा का स्मरण हो गया। उन्होंने तत्काल यह पद वनाकर रागविज्ञावल में गाया—

चक्करी छल चरण सरोवर जहाँ न प्रेम-विचार।
निसिद्ध राम राम की भक्ति समस्त नहीं दुख सोग।
जहाँ सनक से सीन, हंस शिव, मुनि जन निव रति प्रभातिकास।
प्रभलित कमल निमित नहीं संस्थ गुणज निसंग गुवास।
जिसे सर सुभाष मुनित मुख्तलफ श्रमृत रसिपीज।
सो सर छोटी कुवाल विहार हरू हाय कहा रस हो कीजे।
संधर शहित होत नित कीड़ा सोमित सूरजदास।
श्व न सुहात विपयस छोलर वा समूह की ब्राह्म।
इसी से वल्लभाचार्य जी को मालूम है गया कि सुरद्वास के बोध हुया श्रीर लोहा का प्रभास वह हो रहा है। फिर सुरद्वास ने नंद महोत्सव का चर्चा करते हुये राग देव गंगाधर में यह पद गाया—

ब्रज भयो महरि के पूजा जब यह वात चुनी।
मुनि थान लोग, गोकुल गनक गुनी।
भक्ति पूर्ण पूरे पुण्य, रोंगा सुधिर चुनी।
प्रह-नगन-नगत-पल सोधि, कीड़ीं चेड-बुनी।
मुनि धार्म एव भ्रमार नहज सिङार किये।
तन परिते तूनत चीर काजर नैत दिये।

इस पद को सुनकर वल्लभाचार्य जी वहे समझ हुए श्रीर कहते लगे,
‘सुरद्वास नमन एगा सुन्दर श्रीर यथात्थ चर्चा किया है, मानो गुण वहाँ’

(३२)

० 'मृगभागर' नागरी प्रचारिणी सभा, नं २००२, पृ०
भें, मानो तुमने उस उद्योग को त्यां माननी चार्जियों से देखा हो।

प्रकार भारत से नियत सूखने सहायता मुनाया चौक संभाल क्या का उनके स्त्रें में रुझान होने पड़ा। सिर तो सूर्यभाद्र ने कऱे पद पद गये। चारे चारे सूर्यभाद्र ने प्रथम लंबे से लेकर धारास्त्र संय संय तक की संपूर्ण धोला राघों में करी।

इस प्रकार सूर्यभाद्र जी स्वयं वल्लभाचार्य जी के हाथ ने वल्लभ-नंदयार में जोर दिया। जिसे मध्य नेतारों को भी उन्होंने वल्लभजी से भगवन्नाम की दीक्षा दिया। दो दिन तक गार घाट पर रखकर जय वल्लभजी प्रजा को जाने लगे तो सूर्यभाद्र जी उनके साथ हो लिये।

परंतु हमें यह लगा कि सरकार भारत नगरीदास जी ने अपनी ‘पद-प्रमाणमाला’ में सूर्यभाद्र जी का नोमाहाई विहिलनाथजी की प्रेयंता ने पद पर्याय करना लिया है। इस प्रकार में वसे मानामाहारियों के पदों के प्रमाण विलियम है। सूर्यभाद्र के पदों के समान से नगरीदासजी लिखते हैं, "दोह नेत्र कर नीनी हृदय दम जीवायो जी जरीका उत्तर में सूर्यभाद्र।" सो होती के भारतीय योगार्थ है तुकिया। तथा चायरे धीर जमाने जो कारवान बहे बंदुवा उन, श्रीसुक्त से ले जो, जवल्लभजी श्री महादेश जय श्री महादेश। उरोगत जेय के अनुमान वर्तमान जनम ही की लोका गाय।" परंतु स्वयं जमाने जी अपने लाई चारे वल्लभाचार्य जी का शिष्य कहते है। परंतु से भी यही जात चली जा रही है। जल, सूर्यभाद्र जी वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे नो प्रमाणभव है कि वल्लभाचार्य जी ने जी हूँ भगवान राम की प्रेयंता न की हो। सुर्यभाद्रजी से स्वयं सूर्यभाद्र जी कहते है जी संध्याकालों में स्वयं सूर्यभाद्र जी कहते हैं कि वल्लभाचार्य जी ने उन्हें स्वयं मुनाइयो जीला का भेंट विलाया--

श्री वल्लभम गुरु तत्त्व मुनाइयो, नीलामेण विलायो। ११०२।।

८ चोरासो विषोगूती की वारत, सूर्यभाद्र की वारत, पहला प्रसंग।
श्रीर नागरीद्रास जी के लेख से तो पेशा जान पड़ता है मानो गोसाईँ जी सूर से पहले परिचित ही न थे। यह भी अपूर्व नया है। हाँ, श्रागर वल्लभभाष्य जी के लिए 'गोसाईँ जी' गजली से लिखा गया हो तो समयानुसार से यह घटना श्रावधा न हो। परंतु वार्ता के विरुध्द में इस लेख को महत्व नहीं दिया जा सकता। इसमें दो तुकिया महद्वीरों का उल्लेख भी कुछ इसकी तथ्यता के विरुद्ध जाता है। तुकिया महद्वीरों के उद्धरण वा राधाकृष्ण ने ये दिये हैं—

"किसली तेहि देखि ग्रहातें।
तू जू कहे हो तोहि अधवर लूँगो, श्रव मेरी दूती है वाह हरातें।"

"कव निचनीय सुक चली चालो।
गोरी ने होला सजवायो रहिया ने सिकल करयो भालो।"

वा राधाकृष्णदास ने सूर का खूब अभ्ययन किया था। इस संहिता में उनसे प्रारंभ वह सबके ही तो श्रायद 'सब्बाद' जी ही श्रीर और कोई नहीं। परंतु उनको सूरसागर में तुकिया महद्वीर मिले नहीं। श्रायद 'सूरसारामजी' ने इस गद्दियों को जन्म दिया ही। इस ग्रंथ को सूरदास जी ने होली के स्कङ्क से ही श्रारम्भ तथा श्रंग किया है।

सूरदास के वल्लभसंग्रहाय में दीक्षित होने का ठीक-ठीक समय तो मालूम नहीं है, परंतु श्रातुराम से इस घटना को संविध १५५२।

श्रव तो सूरदास पर बहुत विस्तृत अभ्ययन हो चौके हैं, इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय बनाय हैं, 'अष्टद्वापा श्रीर वल्लभ संग्रहाय' (डॉ मुंशी सुंदरसार), सूरसार (डॉ जुनालाल) जिनमें सुरसार (वृंदा सोंमूर्ति) की भुमिका (डॉ रामरत भटनागर) तथा सूरदास (डॉ जनादेव गुप्त)। —संपादक।

* डॉ मुंशी सुंदरसार सूरदासजी लगभग सं १५६६ में वल्लभभाष्य जी की शरण ग्रहण करने लगे। जब सूरदास के साथ लगभग ३१ वर्षों की थी।

'अष्टद्वापा श्रीर वल्लभ संग्रहाय १, पृ २१३ —संपादक।
( 34 )

घौर १५४३ के थीरेज में हिन्दी समय होना चाहिए। यदि १५४३ में पालीयन की जबाई हुई थी तो जिससे तुर के मय भाइ भाजी गये थे तो घौर नवंबर १५४३ में चलमाराथर जी का पूजार्य हुआ था। चलमार ने अद्धन होने हा तुर का उनका निज सूत्र हो जाना, इस यात्रा का सुनन है कि गुप्तार्क ने स्वाद बनाकर सूत्राम का रथी बुझा लिया नहीं हुई थी, नहीं तो गुप्तार्क ने स्वाद बनाकर नायक उनके पेन्ने न चलने। घरायु सूर का श्रीरामार्क दम नवंबर १५४४ मारे ने तुर मुख्य करने का माना गया। एक ही मार में सूर के हुके पेन्ने करते ही गये थे। सूर के नवंबर में यह प्रसन्न न उठना चाहिए। उनकी शीघ्र प्रतिष्ठा के लार्क दम उपर होने आया है।

दया में धाराक सूर ने गोकुल को दुंह्यन करके गोकुल में कुम्भ की वालीजा के पद कहा। चलमाराथर जी ने उन्हें श्रीमानवती के दर्शन कराये। 'वर्तं' के वर्तमान श्रीमानवती की तीव्र का घौर गो मय प्रवचन ठीक था, फलशंक कीतन की तीव्र का प्रवचन न था। सूत्राम को उनके सबसे यथार्थ योग्य दनहर उन्होंने उन्हें यह काम सोचा। वे निःश्रीरत कीता के नाये-नाये पद प्रचार गाने लगे जिसका आरोग्य चलाकर सुरमार में समझ हुआ यह सूत्राम के कीतन की सेवा स्थानाराकर करने के पहले श्रीमानवती की तीव्र का प्रवचन कुम्भ न कुम्भ रहा हो। परंतु कोई ध्यान नियमित रूप से उसके लिए नियुक्त नहीं था। चौरासी की वार्ता में साज़ मोहा है कि प्रदूषण यह काम कुम्भार्य जो किया करने थे; परंतु स्पष्ट ले था यह भी नियमित रूप से नहीं। यह उस समय की बात है जब चलमाराथर जी ने सततो १५४६ में गोकुलन के श्री गोकुलमराथर जी को भ्रम्त किया था और एक घड़ी तक सेवा में रखा। परंतु कुम्भ्यार्य जी की विशेष रूप से इस काम के लिए नियुक्त नहीं हुई थी। उस समय इतनी विश्वास का न था और न हार्थकर। जिस सेवा में श्रीचार्य जी ने सेवा का संबंध किया उसे सेठ
पूर्णमल खश्री ने सं. १५५६ में वनवाना चारभे किया था और सं. १५७६ में उसका निर्माण-कार्य पूरा हुया। वा० राधाकृष्णदासजी प्रथम स्वयं सेवामंडल और द्वितीय विस्तृत सेवा संंडना को एक ही में गढ़बढ़कर सुरदास जी को चारित्रित इस कथन को कि तन "श्री महाप्रभु जी यथास्वत मन में चिंतारे जो श्रीनाथ जी के यहाँ श्रद्धा तो सन्त सेवा को मंडन भयौ और कीर्तन को मंडन नाहीं कियो हैं तत्त्व प्रायः सुरदास जी को दीजिये" अर्थात् ठहराया है। परंतु यह वस्तु: अर्थात् नहीं है। हो सकता है कि कुमनदास जी नये मंदिर में भी अर्थात्मित रूप से कीर्तन का कार्य करते रहे हैं, परंतु वे कीर्तन के लिए निर्मित रूप से नियुक्त न थे।

सुरदास जी की उपस्थिति में यह काम परमानंद स्वामी करते रहे होते। चल्लभसंतदास ने प्रभुको मन में पहले भी परमानंद स्वामी का कीर्तन चूहूत प्रसिद्ध था। 'भाषास' स्वामी ने लोला गान के लिए सुरदास का नाम न लेकर परमानंद स्वामी का स्मरण किया और सुरदास का केवल पद करते के रूप में—

परमानंद दास बिनु तो चिद लोला गाइ सुनावै।
सुरदास बिनु पद रचना को कौन किया कहि जावै॥

चौरासी की वार्ता में परमानंद के हृदय में भगवानलीला का उसी प्रकार चित्रबाणिज्यजी को था कि सुनिया होना था, जिस प्रकार सुरदास के संवेदन में हम ऊपर वर्णन कर आवे हैं। 'सो परमानंद स्वामी की श्री नारायणांजी महाप्रभु ने अनुक्रमणिका सुनाई तव सब लोला की स्मृति भई।' ॥८ है से पता चलता है कि परमानंद भी कीर्तन

८ इस ग्रामाय के लिए देखिये 'श्रीलद्ध' (कोंकणी), पृ. ७५।
'तव परमानंददास निम्न नये पद करिक समय समय के श्री नवनीत प्रिय की को सुनावै।'
का काम विरोध रूप से करते थे। और व्यासजी के उपर्युक्त कथन से यह भी पता चलता है कि परमानंदजी का लीलागान सुरदास के लीलागान से अधिक प्रसिद्ध था। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहले यह कि वे गानकलार में नियुक्त थे और दूसरे यह कि सुरदास से पहले अन्य व्यक्तियों ने सुरदास के सामने कार्य करते रहे। परमानंदजी जी के संबंध के तीन प्रशंसा 'चार्ड' में दिये हैं; तीनों व्यक्तियों जी के समय के हैं। उनके बाद की कोई घटना उसमें नहीं दी गई है। इससे यह अनुमान होता है कि व्यक्तियों जी के साथ उनका बहुत समय तक संसर्ग रहा और उनके उत्तराधिकारी विश्वासजी जी से कम। ये सब बातें उसी और संकेत करती हैं कि सुरदास जी की अनुपस्थिति में परमानंदजी जी की कीमत की सेवा किया करते थे, यदापि वे विश्वस्तरूप से उसी काम के लिए नियुक्त नहीं थे।

श्रेष्ठरी दरवार में

आगे श्रेष्ठरी के अनुसार सुरदासजी भी पिता की तरह श्रेष्ठरी दरवार में नौकर थे। इस अनुसार में अद्वैत ने सुरदास का नाम बोधिजी जी के श्रेष्ठ में ९६ वें नं. पर दिया है और स्पष्ट रूप से उन्हें विष्णु द्वारा रामदास का वेदा बताया है। सुरदासजी ने इस संघर्ष में स्वत: कुछ नहीं कहा है। अन्यों के चैत्यों को चारों से सुरदास से श्रेष्ठजी की मंत्र होने का उल्लेख है। परन्तु उसमें यह नहीं मालूम होता कि सुरदास

श्रेष्ठरी दरवार से सम्बंधित सुरदास महत्मा मोहन दृष्टि थे।
श्रेष्ठरी सुरदास नहीं, जैसा पहले लिखा जा चुका है।
— संपादक।
श्रवण की नौकरी में रहे हों। ‘चार्ता’ में लिखा है कि सुरदास के पद जब वादशाह के कानों तक पहुँचे तो उन्हें दृश्य हुई कि किसी प्रकार सुरदास के दर्शन हों तो श्रवण। एक बार भगवानध्वनि से वादशाह को छूट के दर्शन हो गये। वादशाह ने सुरदास जी से अपना गाना सुनाने को कहा। सुरदास ने यह पद गाया—

मना रे तू करि माधो सों श्रीति।
काम-श्रोत-मद-लोभ तू छाँड़ि सवे विपरीति।
भूरा भोगि वन भ्रेम, (रे) मोद न माने ताप।
सव कुमुमति मिलि रस करै, (पै) कमल वैंधावै श्राप।
गाना सुनकर प्रकार बहुत प्रस्तुत हुआ और बोला कि सुरदास जी तुम भगवान के यश श्रवण गाते हो। सुनकर भी भगवान हो ने राजा पत्र दिया है। सव गुरु जन सेरा यश गाते हैं। तुम भी कुछ सेरा यश गायो। सुरदास जी तो यथार्थ श्याम के रंग में रंगकर ‘कारी कमरी’ हो गये थे, उनपर दूसरा रंग कैसे चढ़ सकता था। श्याम के अन्तिरि किस दूसरे का यश गाते हो कैसे? इसलिए उन्होंने गाया—

नाहिन रहो मन में ठीर।
नंद नंदन प्रभुत हिम में धारित न कहि श्राप।
कहत कवा श्रापक उठि लोक लोभ दिलाय।
कहा कहूँ हिम प्रेम पूरित घट न सिवृ सामय।
चलत वैसंद उठत जागत सुपन सोवत रात।
हरस ने वह मदन मूर्ति दिन न इत उत जात।
श्यामगात सरोज श्रामन लक्ष्मी हस।
गृह आंगे दरम कारत मरत लोचन श्याम।
श्रवण ने मन में गुटा कि किसी वात का लालच तो हुई है ना।

+ देखिये सुरसागर, नाना प्रो स०, पृ० १०६। पद ३२५।
कि मेरा यह गाए, हैसिए! फिर और नहीं किया। योग शाक्त कुछ हृदंसी की तरह में पूछा कि यात्रा नो शाक्त कैसे हैं ही नहीं, प्यासी करने सही हैं। फिर प्रसंगा करते हुए पूछा, बिना देंगे भी हुआ उपनिषद वर्ग में सुध योग लेने हो, तो केले। सूर ने इस प्रसंग का भी कुछ जवाब नहीं दिया। पर योगवाम से सोचा था तो इनकी प्रसंगा के पास हैं, वहाँ इन्हें जो कुछ दिसाने दु:ख है, उसी का योग लेने हैं। बिहारी सरग समय शाहदाक ने सूदस्स ढहा हुआ देखा चाहा, परन्तु वे कवि होने वाले थे। कामाएँ यो उनकी सव भगवान से से विनिमय था। यहाँ चीहो बिहार आये।

जोधपुर के कविराज सुरारिदास ने सुनी पेड़वीमना में इस प्रसंग को योग जी ही लिखा भा। सुरारिदास जी का कथन है कि योगवाम वादसाह ने सूदस्स जी की प्रसंगा सुनना मथुरा के हाकिम को दिया कि सूदस्स को भेज दें। पहले तो सूदस्स जी ने जाना स्वीकार नहीं किया। परन्तु जब उस चाहता तथा योग हाकिम के कहने से सूदस्स जी के बड़े बड़े सेवकों ने समझाया कि चाहा योग न जार्ज़े तो इस हाकिम को योगवाम प्रयोग समथ कर निकाल देंगा। इससे विषयों को कट होगा। क्योंकि यह हाकिम बड़ा दुर्गार और उदार है, इसके शासन में हम सुध से रहते हैं। इसके स्थान पर जो कोई याचिका बह न जाने केला हो? फिर वादसाह किसी भी दु:ख के भी याचिका नहीं छुका रहा है। उन्हें याचिका प्रसंगा सुनी है कि याच घड़े कवि योग गाये हैं, इसीलिए याचिका पिता योग गाना मुनि के लिए याचिका छुकाया है।

सेवकों का याच योगस्स जी को मानना पड़ा। वादसाह उस समय सीकरी में थे। सूदस्स जी के गाने को लक्षर पात ही उनके सूदस्स को दुर्गार में दु:ख लिया और गाना सुंगाने को कहा। सूदस्स जी ने बड़े मस्ताने हुए से नीचे जिला पड़ गया—
सीकरी में कहा। भगत की काम।
श्रावत जात पश्चिम फाटी भूलि गयो हृदि नाम।
जाके मुख देखे हूँ पातक ताहि करयो परनाम।
फेर कवी ऐसे जन करियो सुरदास के ख्याम।
चाणक्य तहीन होकर गाना मुनता रहा। जय सुरदास गा शुके
तो चोला कि में तुम्हारी तारीफ में यह तो सुन चुका था कि तुम कवि श्री गवङ्ग दोनों हो, परन्तु तुम फकीर भी हो, यह ग्राज ही मालूम हुआ है। श्री उसीदेस उनको एक सटोर का मनस्व दे डाला। सुरदास
जो मनस्व स्वीकार करना नहीं चाहते थे। परन्तु जब चाणक्य ने विशेष जोर दिया श्री रोह कहा कि जब ग्राजने अपनी फकीरी की श्रान नहीं ढूँढी तो मे अपनी चाणक्यक की श्रान के से छोड़ सकता हूं। ग्राज ग्राज विभव
नहीं चाहते इस मनस्व की अपासनी को धर्मार्थ वांट देना। सुरदास को
स्वीकार करना पड़ा।

मुनिश्री देवीमसाद जी का स्थान है कि यह चाणक्य चार्ता वाले
कथाक पर दिखपति है, परन्तु श्रास्त्र में सो कुछ नहीं है। मुरादराज जी
जिस गढ़ को सूर का वतवाते हैं वह चार्ता में कुम्भनदास के नाम से इस
प्रकार दिया हुआ है—

भक्तन को कहा सीकरी काम।
श्रावत जात पश्चिम फाटी, विसरि गयो हृदि नाम।
जाके मुख देखे हूँ दुख लाग, ताको करन परो परनाम।
कुम्भनदास लाल गिरवर विन, यह सब मूढ़ी घाम।

मालूम होता है कि मुरादराज जी ग्राजना किसी अन्य व्यक्ति ने
जिससे मुरादराज जी ने सुना हों 'चार्ता' से सूर और कुम्भनदास दोनों के
प्रसंग पढ़े थे। लेकिन स्मृति में उन दोनों का संबंध श्राजः—श्राजः व्यक्ति से
न रहिकर घोड़ा श्रान्त लेकर एक ही व्यक्ति से हो गया। श्राजः श्राजः व्यक्ति
स्वभावत्; सुरदास थे। जो दोनों में से अधिक प्रसिद्ध हैं।
(४९)

यह पत्र चाहे किसी का हो, यह नहीं जान पड़ता कि अरुकर के
मस्तुर हों किसी ने इसको नाम लिया होगा। वों किना ही मुंहकट
क्यों न हो वादशाह के मुझे पर ही “जानो मुझ देखें पालक (दुरा)
जाने, ताकी कर (करवारी) परसार” नहीं कह सकता और जो
यह नहीं मतलब है उसे प्रशमन लगने की ही कोई बात कर सकता है।
एक्सर यह पद सुदुराम का है तो उसी दमो दुरवार से लोट लाने पर
कहा होगा। परन्तु वातावरण में यह जान पड़ती है कि सुदुराम का दुर-
वार में जाना-जाना देखने बुधवार कुंभमलाम ने यह पत्री कहीं है, जिस पर
वातावरण ने कुंभमलाम को ही दुरवार में भेजकर प्रसन्न कहानी
चित्रला दी है।

हो सकता है बादा सामुद्राम के मरने के बाद उनके स्थान पर
सुदुराम की नियुक्ति हुई हो। यह भी प्रशमन नहीं कि जब या० १६३१
में प्रकरण ने पत्रों का पुनर्लिखन किया और मस्तय की प्रथा चलाईं
उम मथम तान्त्रिक प्रागिति सामुद्राम के भिक्षुओं और टेटरसिल, धीरजिन,
मान्नमिह थारि घड़ि-प्रेमियाँ ने उसे सुदुराम की याद दिलाई हो। इसी
संगम में प्रकरण ने सुदुराम को तुलकर मस्तव दिया होगा। सुदुराम को
मस्तव मिलने पर भगत-सुदुराम में दर्द हजारं मतसी होगी। जान पड़ता
है कि हृदी संगम में कोई ने तुलसीदास जी से भी कहा कि वादशाह
के दुरवार में चलिये, प्राथमी भी मस्तव दिला दुःख। और तुलसी का—

“हम चाकर रघुबीर के, पटी लियो दुरवार।
तुलसी प्रव का होते, नर के मनमदार।”

यह जीत है किसी पैसेकी प्रस्ताव के उत्तर में कहा गया होगा।
हो सकता है कि सुदुर कुछ समय तक दुरवार में रहकर फिर प्रपना
मस्तव छोड़कर चले गये हैं। हित हरिंवंश जी के मानस शिम्पा
भुद्रास जी ने भी इसके मान-चढ़ाई छोड़कर संकेतस्थान में था रहने
की बात सिद्ध है जो हृदी बात की निर्ता संकेत करती है—
"कैरी नीकी भावि हो, भी संकेत हयान।
रही सबरा छाँटि की, सुरज हिंज कल्यान।"

‘हिंज कल्यान’ और ‘संकेत स्थान’ के उल्लेख ने यह नहीं समझना चाहिए कि वे कोई दूसरे ‘सुरजदास’ रहे होंगे। अपने ‘सुरजदास’ नाम को तो सूर ने स्वयं ही उल्लेख किया हैं। वे अपनी परिस्थितियों में बाहर क्यों आज्ञित थे, इसको भी हम प्रायः सूर से पहले ही जान सकते हैं। सुरदास जी जैसे राधाकृष्णभिषिक का संकेतस्थान को महत्व देना स्वभाविक ही है। सुरदास तो कुछ के जीवन से समस्या रखने चाहे सबी स्थानों के पल्याव समस्त होते होंगे। हो सकता है कि संकर छूट दिन संकेतस्थान से ही रहे हों। अथवा समय-समय पर उस्का दर्शन कर आते रहे हों।

सुनौ हेवी प्रसाद जो यह भी संभव समस्त हैं कि सुरदास जी ने वस्तुतः अपना पद न छोड़ा हो और समय-समय पर हाजिरो देकर तन-खाने ले आते हो। क्या कुंभनदास का ‘भक्ति को कहा सूकरी काम’ चाहा पद इसी वात की ओर तो संकेत नहीं करता?

रीवां के महाराज रघुराजसिंह ने चक्रवरी दरवार संबंधी एक विचार घटना का उल्लेख किया है। वे कहते हैं कि जब सुरदास दरवार में हाजिर हुए तो चक्रवर ने उससे पूछा, ‘तुम कौन हो?’ सुरदास ने जवाब दिया ‘अपनी बेटी से पूछिए!’ चक्रवर की पुत्री को जब सुरदास का समाचार वात हुआ तो उसने शरीर ही ही भाषा दिया। पीछे नालूम हुआ कि राधिक की किसी सहचरी को किती उपराध के वृद्धस्वरूप स्वीकार के घर जाने के लिए पड़ा था, वही चक्रवर की पुत्री थी। और सुरदासजी उद्वृत थे जिन्हें मा के समय कुछ भी लागत करते हुए राधा जी को कुछ कहकर कहने का चक्का पृष्ठी पर धार्मिक होना पढ़ा था। इसमें अगर कुछ तथ्य हैं इतना ही कि जिस नमून सुरदास जो चक्रवर के दरवार में हाजिर हुए
उसी के उपर-पास श्रकवर की किसी लड़की का देहांत हुआ था जिससे इस विचित्र घटना को गढ़ने का श्रवकाश मिल गया।

इसमें तो संदेह नहीं कि श्रकवर धार्मिक व्यक्तियों को आदर की दृष्टि से देखता था उनके विचारों को ध्यान से सुनता था। मालूम होता है कि उसका दोनों शहीद दोनों का सुखद दरा था। दोनों के प्रतिकार के लिए भी वह साधु-संतों की सहयोगता चाहता था। श्रकवर जानता था कि प्रतिकार का जैसा काम रमते साधू कर सकते हैं, जैसा किसी संस्कृती संस्था-द्वारा भी शायद ही हो सके। दोनों शहीद हुए वह अपने को पृथ्वी पर परमात्मा का प्रतिनिधि और पैगम्बर बोधित करना चाहता था। यदि हिंदू और मुसलमान दोनों उसके नवीन धर्म को प्रहार कर लेते और उसके परमात्मा का दूत अभ्यास प्रतिनिधि प्राप्त करते तो विवश नहीं उसके साधारण की नींद ढूँढ़ हो जाती और निरंतर भी लड़ जाता। एक प्रकार से भारत का खूलीफा बन जाने के कारण उसका जो व्यक्तिगत सम्भावन ढूँढ़ जाता बढ़ तो रहा ही। यह बात ही तुर्की है कि जिन लोगों को उसने मान दिया था, उन्हें उसके धर्म को स्वीकार किया था नहीं, पर इसमें कोई संदेह नहीं कि वह यह आशा बचाव करता था कि वे लोग ऐसा करेंगे। सुरूजस को भी उसने अपने नवीन धर्म में दीक्षित करने का प्रयत्न किया था, इसका पता उसके वजीर अबुलफजल के एक पत्र से चलता है जो उसने सुरूजस के नाम काशी में भेजा था। अबुलफजल के पत्रों का संग्रह दस्ते के भाषके अबुलसामद से संवत १७६३ में किया था जिसका नाम मुल्क-विद्यात्र अबुलफजल है। सुरूजस के नाम का वह पत्र इसी प्रस्तुत के दूसरे दफ्तर के अंत में हो गया है। पत्र का हिंदी स्पष्टता यहाँ हो जाता है।

वादशाहों की प्रसंसा से पत्र के दार्शनिक करते हुए अबुलफजल लिखता है तत्काल तथ्य और वन्यवासी योगी पुरुष सम्बन्धित भी वादशाहों के हित-कामुक तथा भक्त होते हैं और वादशाह भी अपने धर्म का पत्र-
छोड़ कर इन भगवदांशक्तियों की ग्रहणा का पा लन करते हैं और उन व्याधियों का तो कहना ही व्यत्र है जो धर्मराज भी हैं। तिस पर ग्रह इस व्याधि का डंका है जिनकी भक्ति और सत्यता की सीमा नहीं। रामचंद्र ने इनको धर्मराज बनाया है, इन लोगों से इनकी उद्दिस्मानी ने व्यत्र तारीफ हो सकती है। पर भवत न सत्य ही थोड़ा जहर मेरी ज्ञान में ग्रहण है, वही लिखा हैं। विद्वान काल में जनसमुदाय में से चुनकर जैसे रामचंद्र को सत्य परंतु विद्वत्व जिति प्रदान की थी वैसे ही वह उच्च पर ग्रह इस महाभाषा का प्रदान किया है। ग्रह इतना ही है कि रामचंद्र सत्यव एवं जब लोगों में दृष्टि और धर्म को पूर्ण किया। विद्वत्व का यह सदृश ज्ञानमूल नहीं है। किस्में इतनी उद्दी धृत तो चाक-शक्ति है कि इस जगद्गुरु के श्रीमतिक चमकाओं को समझ को और कहते। भूमिका, वर्तमान और वस्त्रों के सव निवासीयों का कर्त्तव्य है कि इन हजरत के परमात्मा की परमात्मा की ग्रहणा मान कर उनके पा लन का चलन करं।

मे ग्रह की विचार और उद्दी जिसका चुरात बढ़ाते हैं जो सजनों और निजकप पुस्तक से सुना करता था। ग्रह परोख ही ग्रह की जित्र रखता था। ग्रह जो सरल तथा सुमारी वाद्गुरु रे सुना है कि ग्रह इस समय के व्याधियों के महाभाषा और परमाणुविकता (हक्कानियत) का परिचय पाकर पूर्ण सत्य हो गये हैं तो ग्रह की उद्दी और सत्य की पूर्ण परीक्षा हो गई है। भाषाव्यक्तियों की विचार के वेश में वह पहचान लेना इतना कठिन नहीं है जितना युग्माफ्रथ और राजनीति में पहचानना है। भवत से उद्दिस्मानी लोग ऐसे भी हो जाते हैं, जो वाहनी वेश से वहकर भीतरी रहस्य से ग्रहणित रह जाते हैं।

हजरत वाद्यागुरु श्रीमत ही इज़हाबाद को पवारें। ग्रहण है, ग्रहकों सेवा में उपस्थित होकर अन्तः शिव (मुरोद हक्की) वनने। परमात्मा को धन्यवाद देना चाहिये कि ग्रहेत भी ग्रहकों ईश्वरजा जानकर
भिन्न मानते हैं। इसे दर्शाकेदर के चेलों के लिए भी इससे प्रत्यक्ष व्यवहार से प्रभावित होता है कि वे हज़रत को भिन्न मानें। इसके लिए हज़रत श्रीराम श्री प्राप्त करते हैं, जिससे हम को भी प्राप्त सदस्यों और श्रापकों सर्वसमानता का लाभ प्राप्त हो।

यहाँ का कार्य म्हणूँ श्रापके साथ प्रत्यक्ष व्यवहार नहीं करता है, यद्यवर हज़रत को भी भरा लगा है। इस सम्मान में उसके नाम के प्रमुख श्रापकों नाम ही चुका है। इस तुष्ट श्रापकों को भी प्रदान हुई है कि श्रापक, दो-चार श्रापर लिखे। श्रापर वह करीबी श्रापक श्रापवर न मानते हैं तो हम उसके निकाल देंगे। उसकी जगह के लिए श्राप जिसकी उचित समस्या, जो दौड़-चक्मालों का तथा संचारों ज्यादा का ध्यान रखे, उसका नाम लिख मेज़ियों जिससे प्रार्थना करके उसे नियत करा है। हज़रत यादवकों श्रापकों परमाल्म से भिन्न नहीं समारे हैं। इसलिए यहाँ के काम की व्यवस्था श्राप की ही इस्पत्त पर छोड़ दी है। यहाँ ऐसा श्रापक चाहिए है जो श्रापक अथवा राजा और श्रापकी व्यवस्था के अनुसार काम करे। सदृश के श्राप से ही ऐसा कहा जा रहा है। खिलायों वगैरह में जिस किसी के श्राप श्रीमद्भक्त समय श्रापर जाने कि वह इस्कर को पहचानकर ज्यादा का प्रतिवाद करेगा उसी का नाम जिस मेज़ियों को प्रार्थना करके सेज है। भगवानों को भगवानीय कार्यों में श्रापनियों के तिरस्कार की श्रापका न होनी चाहिए। भगवानु की कुछ से श्रापका शरीर ऐसा हो है। भगवानु, श्रापकों समस्या में अन्द्रा दे, श्रापकों समस्या में स्वर रखें व्ययः सलाम।

यह पत्र चुर्चास के नाम है जो काशी में था ( दर वन्नास वृद्ध )। परंतु इस नाम का काशी का कोई भी महाराज वर्षित नहीं है। इतने वहाँ महाराज कोई काशी में हुए हाँ श्राप काशी उनका नाम भी सम्पूर्ण देशी भ्रान्ति के प्रति व ४७-२१
भूल गया हो, यह चार कुछ अनहोनी सी लगती है। 'भारतवर्षीय उपासना-संप्रदाय' नामक पुस्तक में ग्रांतियाँ थीं। प्रत्येक वाह्य दृष्टि ने रामाभूमी जी के गिनती सूरदास का उल्लेख किया है जिसकी स्मारक का उन्होंने शिष्यपर में होना लिखा है। परंतु उन्होंने प्रवाह के ग्राम्य पर लिखा है और यह प्रवाह भी किसी के उच्च मस्तिष्क की ही उपज मालूम होती है; क्योंकि काशी में ऐसा प्रवाह चलता है नहीं। प्रत्येक यह पत्र किसी काशी-नियासी सूरदास को नहीं लिखा गया है। ठीक यही मालूम होता है कि वाण के कोई सूरदास काशी में ग्राहक कुछ दिन तक उहरे थे। उन्हीं को यह पत्र लिखा गया है।

लेकिन प्रश्न यह है कि यह सूरदास थे कौन? हमारी समाज से दो हो सूरदास पेसे हैं। जिनको इस पत्र का लिखा जाना संभव ही मलता है। एक सुर मदनमोहन और दूसरे हमारे चरित्रार्थक सुरस्यार्य। पत्र के स्पष्ट है कि यह सूरदास बहुत मस्तिष्क कवि था और साहित्य था। उसकी कविता मनोहर होती थी: ('समुनाने दिलकश') और यह परसारमा के उन मित्रों में से था ('सुवार्दोस्त') जिनकी यात्रा का स्थानों को भी पालन करना चाहिए। सुर मदनमोहन के संबंध में भी ये वर्णन किया है। तक कही जा सकती है, परंतु सत्य की उस प्रधाशी के साथ नहीं जिसके साथ सुरस्यार्य के संबंध में। जिस सूरदास को यह पत्र लिखा गया है यह अक्कारी दरबार में उत्तर तिरिक्त भी नहीं मालूम होता जितना सुर मदनमोहन को होना चाहिए था। सुर मदनगोहर अक्कारी के समय में संडीले के अभ्यासी थे। कहते हैं कि एकदा इस गौराधि वैण्डल प्रायवाल ने तहसील की मालूमाजी के तेरह लाख रुपए साचूरों को वांट दिये और संडीलों में कंड-पत्थर भरकर मेज दिये। संडीलों में कागज के टकड़े भी डाल दिये थे जिन पर लिखा था—

तेरह नाम संडीले ग्राम, सब साँचू मिली गढ़े।
सूरदास मदनमोहन भारीरातु सटके।
शोर सांगकर सुंदरावन पले गये। पर धार्मिक ने उनको मास कर दिया।

उपर्युक्त पत्र का स्पष्ट उद्देश्य सुदृढ़ को दीनेहताही ग्रहण करने के लिए फुसलाना था। इसी उद्देश्य से उसमें धार्मिक के महत्व का चर्चा किया गया है शोर सुदृढ़ के ऊपर का भार दालने का प्रयत्न किया गया है। प्रगर वह सुदृढ़ सूर मदनमोहन होते तो इस ज्ञान का उल्लेख उसमें ग्रहण होता। यह अगर वह जहाँ धार्मिक का चार्चालमिक महत्व सुनिश्चित करता, वहाँ दूसरी श्रृंखला सूर में कुनलता-दुःखि उत्साह करते में भी सहायता होता। इसलिए वह पत्र सूर मदनमोहन के लिए न लिखा जाकर सूर श्रृंखला के लिए ही लिखा गया है। चाहिए सुदृढ़ काशी के नहीं थे, फिर भी उसमें संदेह नहीं कि वे काशी ग्रामे थे। वजहम संस्कृतवालों के लिए चार्चालमिक से विशेष आरक्षण होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि उसका चार्चालमिक जी के जीवन के बहुत संबंध था। उन्होंने चार्चालमिक भी काशी में ही किया था। शाखाव के उनके विजयालाम भी यहीं पर हुआ था। पुख्तमदृढ़ चाही उनके लाखी के कुमारात्म किया यहाँ के थे। शोर श्रंखला में संस्कृतवाल लेकर वे यहाँ रहे और यहाँ उनके चैकुंडलाम युक्त। काशी में उनकी लोग वैकल्प्य हैं जिनको उनके संस्कृतवालों परम पवित्र समान है। हटुमान-वात्त पर उनके महायात्मय का व्याख्या है बिशेष रूप से पवित्र माना जाता है। बहुत संभव है कि सुदृढ़ काशी ग्रामे यहीं और यहाँ के करोड़ी ने उनके साथ दुरा व्यवहार किया हो। पत्र का यह अंश जिसमें करोड़ी का उल्लेख हुआ है, स्पष्ट प्रकट करता है कि कुछ धार्मिकों ने करोड़ी के दुर्योग-व्यवहार की शिकायत प्रकट तक पहुँचाया था।

चार्चालम-संस्कृतवालों को अक्कवरी दुर्योग के वहु-वहु दुर्योगवारियों का रश्म श्रामता जिनको सलाह से उनके मंदिरों का प्रबंधन किया जाता था। चौराही वारता में लिखा है कि जब श्रीनाथ के मंदिर में भीलवाया संग्रामियों
की सुल्ता हो गई। इससे यह पत्र १६५० द्वारा ५७९२ 'क' वाच का लिखा होना चाहिए। लेकिन एक यात्री को देखते हैं और रसना चाहिए।

यह यह कि इलाहाबाद जहाँ पर यात्रा की गया था वह स्थान विलक्षण थीरता नहीं था। प्रयागः चढ़ने प्राचीन काल से एक पवित्र तीर्थ माना जाता है, श्रद्धा ने कुछ इस दौर से भी इस स्थान को प्रसन्नने करने शहर के लिए जुड़ा था। केवल चलचरों को दृष्टान्त ही यहाँ से यात्रा नहीं होता प्रयागः दीनेरवाद के प्रचार के लिए भी वह यथायुक्त स्थान होता। स्वतः प्रयागः एक घोटा-मोटा नागर ही रहा होगा। प्रत्येक अनन्तर बादशाह इलाहाबाद मिलाकर ले जायेंगे, यह कहने के लिए यह जान से नहीं कि इलाहाबाद की उस समय तक स्थापना हो गई हो। विना नहीं दुमारों के यह भी प्रयागः का नाम इलाहाबाद रखा जाए। हो सकता है कि उस समय बादशाह इलाहाबाद की यथायथ स्थापना के लिए जा रहे हैं। प्रत्येक अनगर यह अनुमान तीर कि तो यह पत्र कार्तिक सुदी १२ संवत १६५० से कुछ दिन पहले का होना चाहिए, व्याख्या कि बादशाह इस दिन पत्थरते सीढ़ी से स्वागात हुए थे और घमण्ड सुदी ६ संवत १६५० को प्रयागः पहुँचे थे।

ऐसी दिशा में यह संभव नहीं कि प्रयागः में सुरदासजी क्रक्षक से सीखने गए हों। सत्राठू ने सुरदास के साथ जैत्य साक्ष्य किया था, जिसका इस पत्र से कुछ प्रकाश पड़ता है, उसे पढ़ते हुए, यह नहीं कहा जा सकता कि सुरदास ती के उसके आराध्य को टाल दिया हो। परंतु धरीदर निहोने का जो प्रस्ताव, पत्र में 'किया गया है उससे यह अधिक संभव सालूम होता है कि सुरदास ने प्रचरण ही उस दिन को टालने का प्रयत्न किया होगा जिस दिन हज़ारों समूह यह धर्म-संकट साजशील, उपदेशित हो गया था। सुरदास प्रयागः तो प्रचरण गये थे, इसका संकेत निम्नलिखित पट्टू से मिलता है—

५० सूरसागर, नवम्बर कान्ति, पूर्व १६५१, पद ६५५।
जय जय जय जय मायव बेनी।
जगहित प्रकट करी कहनामय योगतन को गति देनी।
जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप संगसजी यापसनी।
जनु ता लवण तरवार निविलम धरी करी कोप उपनी।
मेरह मूँह वर वारि पाल छिन्न बहुत चित की लेनी।
सोभित ग्रंथ तरंग निरबंध धरी धार श्रति पैनी।
जा परसी जीते जम-सैनी, जमन, कपालिक, जैनी।
एक्क नाम लेत नव भाजन, पीर सो भव-भय-सैनी।
जा जन-मुद्र निरव समृध हैं, सुंदरि सरसिज-सैनी।
सूर परस्पर करत कुलाहन, गर सूग-पहरावैनी।
455।
परंतु यह नहीं मालूम होता कि वे खरबक ने सिजने के लिये हो प्रयाग शायेय हों। हो सकता है कि वह ध्वस्त वल्लभचार्य जी के साथ
प्रवेश गये हों और उसी श्रवस्त में प्रयाग भी हो प्राये हों। [ वल्लभचार्य जी के समयसास लेकर काशीवास करनें में भी उनका उनके साथ
रहना, समय है।]
परंतु यदि इस पत्र को इलाहाबाद के वशने के वाद यो
कम्या भी हालत में इलाहाबाद में वादासाह से सूर्दस की मंडल होना
नहीं घट सकता। क्योंकि गुजरात के उपद्रव को द्वारे के लिये इलाहाबाद
या वादासाह जा माल यदि 3 को रवाना हुए तो कई वर्षों तक
उस पर रह गये। गुजरात का उपद्रव शांत हुआ तो काबू भी
दूसरा उपद्रव उठ गया जिससे 13 वर्ष तक वादासाह को पंजाब
हो में रहना पड़ गया। संवत 1655 में वे वामरे शायेय, पर तब तक
संवत 1642 के पहले ही सूर्दस का गोसिक्यास हो गया था।
साहित्यिक जीवन

इसमें तो संदेह नहीं कि सुरुआत जन्म ही से ऐसी परिस्थिति में पले थे जिसमें उनका कवि होना स्वाभाविक था। उनके पिता वाहा-श्रमदास दयाल कवि थे। शचिरिश सरोज में से उनका एक पद पहले दिया जा चुका है। शायद कालिदास के हजारों घंटे रागसागर भूमियों में शोर भी दिये हैं। प्रफुल्ल होने के कारण अपने द्वर्त थे भावों को व्यक्त करने की सुर की हस्त्रा सामान्य कवियों से अधिक थी। वहाँ चंद्रर जिन स्थितियों में वे रहते, उन्होंने उनकी कविता शक्ति को ग़र्मी भी पुष्ट कर दिया। तानज़ीन की मिलाता, वल्लभचार्य की शिक्षा, वेदांत का साक्षर, व्यक्तियों उनको प्रपनी तत्क्षमता शोर गान कुशलता, इन सवेदन सजावट उनको अदुस्थित काँपूछ-समझ पता दिया था। चौरासी की वातां से पता चलता है कि जैसे कविता करने के लिए उन्होंने सोचना-विचारना कुछ भी न पड़ता हो। कविता उनके सूंद से संगीत के रूप में अपने ध्वार धाराप्रवाह वह चलती थी। उनकी कविता का वाहलय ही उनकी रचना-सौकर्य का परिचारक है। चौरासी की वातां से पता चलता है कि पहले पल हो वे केवल विनय के पत्र धाराने गाया करते थे। वल्लभचार्य जी से संदेह होने पर उन्होंने जो पढ़ गया था, उसमें छूरे के दैनंदिन की सलाह मिलती है। उसे हुनकर वल्लभचार्य जी ने उन्हें भगवद्गीता-गान की ग़र्मी प्रेषित करने के उद्देश्य से। फ़हा था कि छूर होकर इतना घिसवालो बचा नहीं है।

वल्लभचार्य का उपदेश पाकर उन्होंने जप ख़म्बलेला गाना प्रारंभ किया तो एकदम सागर ही भर दिया। यह तो निश्चय है कि उन्होंने भागचत के धार्मार पर जो पढ़ गये हैं, उनकी रचना मंथ-मच्छन के रूप में श्रंकरभाव नहीं हुई है। वल्लभचार्य जी ने उनको कीर्तिन की लेखा साँपी थी। श्रंकर के समय वे नित्य नवीन पद बनाकर
गाया करते थे। किस-किस समय में कौन-कौन पद बने, श्राज इसका निपटारा करना असंभव है। जब उन्होंने सहजातिविद पद बना लिये थे तब अधकर ने उन्हें हर्वर में दुलाया था। ६७ वर्ष की आयु में उन्होंने अपनी रचनाओं का सार हाँचकर सूरसारावली बनाई जिसमें उन्होंने एक जल पद रचने की वात कही है—"ता दिन ते हरिदीला गाई एक जल पद वंद"। परंपरा से उनका सवा जल पद रचना प्रसिद्ध है। परंतु सूर के जिनके समह मिलते हैं, उनमें से किसी से भी ५-६ हजार से ज्यादा पद नहीं मिलते हैं। कौरोली के दिके श्री गोरखावरी महाराज वालकुलशाल जी ने चार राधाकृष्णादास से कहा था कि उनके यहाँ पूरे सवाल पदों का संग्रह है, परंतु उस संग्रह को श्राजक किसी ने देखा नहीं।

जो कुछ भी हो, परंतु जब स्वर्य सूरसाराजी कहते हैं तब मानना पड़ेगा कि उनके एक लाख पद रचने की वात-ही-वात नहीं हैं। मालूम होता है कि इन पदों को सूरसाराजी ने स्वर्य संग्रहीत नहीं किया था। इसी से शायद वे सब पद मिलते नहीं हैं। दो जाने के दर से उन्होंने सूर-सारावली नाम से उनका केवल एक संज्ञाप रत्नवा सूरजमात्र बनाई थी। भाग कलपना के रचिता ने सूरसाराज के संग्रह के संबंध में तीन विकबंटियों का उल्लेख किया है। एक हजार पद चाल हजार पद वनकर ही चूर की मर्दू हो गई थी। सूरसार चाण से भागवत ने शेर २५ हजार की रचना के एक लाख पद पूरे किये। परंतु यह ज़ीवन नहीं है। क्योंकि सूरसार चाण स्वर्य सूरसाराजी की थी जिसका उल्लेख उन्होंने साहित्य जाली थी वाले पद में किया है ["नामकरणो मोर सूरसार्य सूर चाणसार""]

दूसरी विकबंटि यह है कि गर्मकोरह साहित्य ने सूरसारावली के संग्रह किया। उन्होंने सूर के एक-एक पद के लिए एक-एक अर्थात्तियों देने की चौपाया की थी। शास्त्रियों के लोग से लोग खूँटे पद भी लाने डुबे तथा साहित्य ने उन्हें सोता कर लेना निश्चय किया। जो पद सूरदास के होते
(५३)

ये वे ढूँढ़े हाँ चाहें वहें बराबर तोल के निकलते थे। उससे कम ज्यादा तोल के भूँटे समकक्ष चापिस्कर दिये जाते थे। तीसरी किंवदंती सुरसागर के संग्रह का भेद यवङ्ग श्रक्तर को देती है। श्रक्तर के सामने भी जब भूँटे-सच्चे पदरों के निर्धार की समस्या उपलब्ध हुई तो उससे पदरों को जलाना श्रारभ किया। भूँटे पद जल जाते थे परंतु असली पदरों पर श्रांवं भी न जाने पाती थी। ये किंवदंतियाँ जिस रूप में हैं, उसमें तो ये अपनी अस्तित्व के प्रमाण अपने ब्राह्म हैं। परंतु यह श्रांवमस नहीं कि श्रक्तर श्रांवचा श्रीम का सुरसागर के संग्रह में कुछ गाया रहा हो। किंवदंतियों से प्रकट है कि सुर के पदरों की चर्चा श्रक्तरी दृश्वार में हुआ करती थी। व्या यार्चय कि श्रक्तर ने कभी इस वात की श्रीलं संकेत किया हो कि सुर के पदरों का संग्रह हो जाता तो बड़ा श्रांवं होता, और श्रीम ने उसे गाँठ बांधकर उनके संग्रह का प्रयत्न कराया हो। श्रायकत्र सुपनेवाले संग्रहों में क्याक्रम की श्रापन के लिए बीच-बीच में जो दूर्देव सुरसागर में जोड़ दिये गये हैं, वे सुरदास के नहीं मालुस होते सुरदास के सब पदरों का न सिलाना भी इस वात का धोतक है कि स्वयं सुरदास जी ने उनका संग्रह नहीं किया। इस काम को बहुत भारी समकक्ष ही शायद सुरसागरावली ई की रचना की गई हो।

ई सुरसागरावली, रचना-शैली, भाव और विचार-पद्धति तीनों की द्रष्टि से ही सुरदास की रचना है और सुरसागर की भूमिका के रूप में है। इसमें सुरसागर की कथा का श्राद्धर, संक्षेप में, वर्तमान कथा-प्रवाह के साथ दिया गया है। सुर ने, स्वयं अपनी रचना का संग्रह न कर सकने के कारण, उनके प्रसंगों के निर्धार एवं भाव-व्याप्ति के सार को एक स्थान में देने के उद्देश्य से इसकी रचना की थी। यह मूल रमायण, मूल भागवत श्राद्ध की पद्धति पर लिखा जान पड़ता है। वचन-कांश विद्यालों-हारा यह सूर की रचना के रूप में मात्र है। —संपादक।
धानकल सूर के पदों का संग्रह सूरसागर के नाम से प्रसिद्ध है। परंतु मूलस्वरूप में सूरसागर सूर के पद-संग्रह का नाम न होकर उनकी उपाधि मालूम होती है। चौरासी की वाताओं से पता चलता है कि यह पद-प्रशिक्षण में से सूर और परमाणु सागर कहनाते थे। चल्लभार्य की भांगवत को पीयूष समुद्र कहते थे, हर्षी से स्वयं चल्लभार्य की "भागवत पीयूष समुद्र संधनम्" कहनाये। हर्षी प्रस्तुत सागर को चल्लभार्य ने अनुकूलणिका का अभ्यास कराकर सूरसागर और परमाणुसार के हाद्दय में स्थापित कर दिया था। इसलिए वाताओं के प्रस्तुत सूरसार या एकसार 'सूरसागर' और परमाणु 'परमाणु सागर' कहनाये।१५ वाताओं में सूर के तीसरे पदलग्न में भी सूर को सागर कहा है। उस धारा पर वे अपने पदों के सागर कहें गये हैं। "सूरसारजी ने सदापन्थित पद किये हुए चाको सागर कहिए सो सब जगत में प्रसिद्ध मयै।" पीछे सूर की रचनाओं का संग्रह भी सूरसागर कहा जाने लगा, जो कार्यकर्त भी है। सूरसागर से उनकी ग्राह्य से अंगत तक की रचनाओं का संग्रह होगा।

संवत् १६०७ में उन्होंने साहित्य लघुरों की रचना की जिसमें उन्होंने अपनी चंद्र-परंपरा सम्बन्धी पद दिया है। इसकी रचना का संवत्त नीचे लिखे पद में दिया है।

मृत्युं मुनिमो रसन के रसे लेप।
दशनां गोरी नन्दन को लिखि सुवल संवत् पेप।
नन्द नन्दन मास छैले हीन तुलिया चार।
नन्द नन्दन जन्म ते हाँ बागा सुख श्रागार।
मित्य रिख सुकरमयोऽ विचारि सूर नवीन।
नन्द नन्दन दासहित साहित्य लघुरों कीन।
इसमें थत्त्र है। यथापि सूरसागर में भी थत्त्र मिलते हैं, तथापि।

१५ देखिये परमाणु दस की वातार, पहला प्रसंग, प्रश्न छाप, पृण ५५।
साहित्यजहरी के पद उसमें नहीं हैं। जान पड़ता है कि साहित्यजहरी में उनके सुरुसित रहने के कारण ही सूरसागर के संग्रहकारों ने सूरसागर में उसके संग्रह की श्रावकत्वा नहीं समझी। सूरसागर और सूरसारावली में इनके पदों के न मिलने से यह अनुमान न लगाना चाहिए कि इसकी रचना सूरसारावली के पीछे हुई है। साहित्य लहरी की रचना फेयल भक्त-उद्रेक के कारण नहीं हुई है बल्कि काव्य-चमकार दिखाने के लिए।

साहित्य लहरी नाम ही से प्रगट होता है कि सूरदसजी केवल भक्त कवि कहलाने से संतुष्ट नहीं थे, अपनी साहित्यशक्ति का भी प्रदर्शन करना चाहते थे। वर्षों संग्रह में वहाँ बाले कुलस्मक कवियों से अपने काव्य की श्रेष्ठता का प्रशुभव उन्हें बहुत पहले हो गया था। एक बार उन्होंने कुलस्मक की यह कहकर नीचा दिखाया था कि हम्हारी कविता में तेरी छाप है। साहित्य लहरी भी इसी महत्वाकांक्षी प्रवृत्ति की संकेत करती है। उसे उन्होंने स्वांतः सूक्ष्म नहीं वनाया था बल्कि दूसरों के लिए। शायद कुलस्मक कवियों में उन्हें साहित्यकर्ता का यथार्थ खटकता था। इसलिए उन्होंने इसको ‘नन्द्र नन्द्र दासहित’ वनाया था। यूह ग्रंथ समझ कुलकुल खुदापी की नहीं जान पड़ती। इनमें सूरदसजी का जन्म लगभग संयुक्त १५६३ में माना है इसके प्रदर्शन साहित्य लहरी की समाप्ति पर सूरदसजी की श्रव्यस्त ४४ वर्ष की होगी जो ऐसी सन्न्यासि के लिए अत्युपयुक्त नहीं है।

साहित्य लहरी की जो प्रति प्रकाश में गाई है उसमें ठीक भी दी हुई है जो सूरदस की बनाई हुई मानी जाती है। परन्तु जैसा राधाकुण्डलस ने बताया है सहुल पीछे के बने भावाभूमि के दोहों का उसमें प्रमाण के लिए पेश किया जाता। इसके भी विपरीत होता है?

सूरसारावली की रचना सूरदसजी ने ६७ वर्ष की आयुम्या से की जैसा कि निम्नलिखित अवतरण से सिद्ध है—.
गुरु प्रसाद होत यहू दर्शन सरसठ वर्ग प्रवीण।
शिवविज्ञान तप करेंि बहुत दिन तज पार नहीं लीन। ॥१००॥
× × ×
ता दिन ते हरि लीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताको साह नूर सारावलि गायत्र प्रति भावना। ॥११०॥
सूरसारावलि को सूरदास जी ने होली-लीला के रूप में बनाया है।
"केजल पुंहि विष्णु हरि होरी होरी हो वेद विदित यह वात" इस पद के साथ सारावलि आरंभ होती है और प्रारंभ में होली की परिस-मांसि के साथ ही समाप्त भी होती है। इस पद में सारी स्त्री की, होली के गेम के रूप में कल्याण की गई है।

यह तो स्पष्ट है कि सूरदास मरते दम तक कविता रचते रहे होंगे जिनका सूरसांग में संग्रह हुआ होगा। चौरासी की वार्ता में चार पद दिये हुए हैं जिन्हें उन्होंने ग्रहण जीवन के प्रतिम दिन रचा था। कहते हैं कि सूरदास जी ने नलदमयन्ती३ नामक एक काव्य की रचना भी की थी, परन्तु ग्रंथ यह प्रण्य कहीं मिलता नहीं है। यह निर्णय करने का भी कोई साथन नहीं है कि यह केवल प्रवाद ही तो नहीं है।

३ सूरक्षत 'नलदमयन्ती' प्रण्य ग्रंथी तक विद्वानों के देखने में नहीं भाया। इसका उल्लेख मिठकवियों ग्रंथ 'रावाणपुराण' ने किया है। डॉ. मोहनदास द्वारा 'प्रिति श्राब वेल्स म्यूजम, वमवई में देखी पुस्तक 'नलदमन' सूफी डंग पर लिखा गया प्रेम काव्य है। ये सूरदास, जैसा कि उस प्रण्य में प्राप्त लेखक के परिचय सेह स्पष्ट है प्रकट दारी सूरदास नहीं है। (देखिये, नागरी प्रचारीकी पत्रिका, भाग १६ अंक १)

—सम्पादक
स्फुट प्रसंग

यापने जीवन-काल ही में सूर को जो प्रसिद्ध-ज्ञाम हो गया था, उसे देखते हुए स्त्रभावत: उनका परिचय-संदेह बहुत विस्तृत होना चाहिए ।

जून्नुवन की तत्कालिन चैत्य-संदेही तथा प्रकाश दरवार में यान; सभी उनको जानते रहे होंगे । चलचार्यार्जुन उनकी वर्तन शक्ति की बहुत प्रशंसा करते थे । नोसाई विघ्ननाथ जी उनकी पुष्टिमार्ग का जहाज समक्षे थे । प्रकाश दरवार में समय-समय पर उनकी चर्चा दिखती थी ।

प्रकाश उनके पद्धों की प्रशंसा करता था । प्रांजलफल ने उनके लिए ऐसे निषेधयोग्यों का प्रयोग किया है जो उच से उच महामायों के लिए ही प्रयुक्त किये जाते हैं । इस महापुरोहों का तत्कालिन लोगों के साथ किस प्रकार का व्यवहार था श्रीरोग जिस प्रकार से इस महालम्बों को देखते थे साधारण मुख्य की कल्पना में उन्हें सजीव समझने के लिए इसका निषेध परिभाषण अत्याधुनिक है । परन्तु जैसा हमारा जो वाटता है । इसका ध्यान मिलता नहीं । जो कुछ धोखा सा मिलता है उसी का यहाँ हस स्फुट प्रसंगों के रूप में चर्चा कर डेते हैं । जब तक श्रीराम सामसारी उपलब्ध नहीं होती तब तक इसी पर संतोष करना चाहिए ।

श्रीनाथजी के मन्दिर के अवधारों कृष्णदास भी महापुरोहों चलचार्यार्जुन के प्रभाव शिखरों में थे । ये कवि भी यथ्योग्य थे । इनकी भी राम-द्वार में गणाना की जाती है । इन्होंने बहुत पद्धों की रचना की है । चार्जा में लिखा है कि पंक्ति चार सुरदासजी ने इससे कहा कि हम जो पद लिखते हो उनमें श्रीराम से प्रभु को भक्ति से प्रत्येक में में नीचे दिखाने से चूखते न थे । मीराबाई के प्रतिरिहित हितकोशियां, यास ग्राण्डियों संबंधों की 'नाक्षेरिक' करने के उद्देश्य से इन्होंने पंक्ति चार मीराबाई की मेंट फेर दी थी ।

वंगमालियों की भोपाली में श्राय लगा कर गोवर्धन से निकाल दिया था ।


( ५५ )

श्रीर रह रहेर कर एक यार गोसाइं विमलनाथ जी की दर्शनी चन्द्र कर दी थी। परन्तु सुरदास के आदेश का के जवाब न दे सके। निम्न, कर को जो, वर्षा ताव के पृथ्वी पद चलाउँ जिसमें तूनारी द्वारा न प्राव। और पुरूष में जाकर चढ़े पुकारमात्र होकर नया पद चलाने लगे। श्रीन तुक तो वन गई पर यारों न चढ़ सके। वहुत करने पर भी जब न वन पड़ता तो यह निरंच्छ कर कि फिर सोचेंगे कलम दबात काभज वहाँ छोड़ कर श्रीनाथ जो का प्रसाद लेंगे चले गये। जब कुंभ्द्रास लौट कर ग्रामे तो देखते हैं कि श्रीमानजी ने पद पूरा कर दिया है। इसके कुंभ्द्रास चढ़े प्रसाद हुए। पद यह था—

रागगीरी

श्रीवत वने कान्ह गोप वालक संग 
नेंचुकी खूर रेशु दुरुत उलकावली 
भों हेम ननम चाप वकलोचनवान 
सीस सोव्हस्त मत मयार चंद्रावली ॥

उदित सुदरा सुदर सिरोमलिण वदन 
निरंशि पूली नवल जुवली कुमुकावली ॥

श्रवण सकुच उघर विस्म फलहुसार ।
कहत कचुक प्रकटित होत कुंद कुमावली ॥
श्रवण कुंडल भाल तिलक वेंसर नाक 
कंठ कोसुबमलिण सुभाग विवलावली ॥

रतन हाँटक खचित उरसि पदिकरिपति 
बीच राजत सुभुपलक मुक्तावली ॥

श्री नाथ जी कृत —

वत्तयकरणि वाजूवंद श्राजानुशुज 
मुद्रिका कर दल विराजत नखावली।
वग्नुतर मुरलिका मोहित प्रसिद्धिविश्व गोपिका जन्मसि प्रसूखित प्रेमावली।
कटि छुट्र बंटिका नष्टित हीरामथि नामि शंबुज वलित भूंग रोमावली।
धायक बहुक चलत सबकालित जानि विय गंडमंड़ल रचिर-श्रमजत कणावली।
पीत कौशिय परिवास सुंदर शंग चरण नृपुर वाचसैत सवदावली।
हृदय कुण्डादास निरवरधरण लाल की चरण नत चंद्रिका हरति दिसावली।

उत्थापन के समय जब सूरदासजी दर्शन के लिए यात्रा तो कुण्डादास ने वह पद उनको सुनाया। तीन तुक तक तो सूरदास कुछ नहीं बोले; किंतु यहाँ ही कुण्डादास धागे बड़े लगे लोग ही उन्होंने कहा, कुण्डादास मेरा तुमसे बाद है प्रभुयों से नहीं, मैं प्रभुयों की चाच्ची पहचानता हूँ। कुण्डादास जुप रह गये।

कहते हैं तानसेन से सूरदास की बड़ी मित्रता थी। वे सूर के पदों की बड़ी प्रशंसा करते थे। वे प्रकृति दर्शवार में सूर हे, पद गाया करते थे। इनकी प्रशंसा में एक दार उन्होंने वह दोहा कहा—

किंठो सूर को सर लायो, किंठो सूर की पीर।
किंठो सूर को पद लखी तनमन धुनत जारी।
इसके जवाब में सूरदास ने वह दोहा कहा—
विवाह यह जिय जानि के, सेस न दीव्य प्रान।
धरामेह सब दोलते, तानसेन की तान।
तानसेन के सूर के पद को गाते पर यहते हैं, एक समय
द्राक्षरी दरवार में एक मनोरंजक प्रसंग वड़िन हुया। तानसेन ने यह मष्ट पद गाया था—

जसुदा बार-चार यों गाये।

है कोई ब्रज में हितू हमारों, चनत गुप्त-लहिं गाये।

द्राक्षर ने पुंछ इसका प्रथ बया है। तानसेन ने कहा कि यशोदा समृद्ध उपस्थित वियोग से कायर होकर ब्रज में बार-चार कहनी है कि ब्रज में कोई हमारा ऐसा बंधु है जो कृष्ण की मदुरा जाने से रोक देता है।

इतने में देख फैजी श्री गये। उन्होंने कहा ‘बार-चार’ फूट-फूट कर रोते हुए कहती हैं। चीरवल के घर में उनके पुछ गया तो वोले “यशोदा ‘बार-चार’ प्रथात्, दरवाजे-दरवाजे जाकर यह कहती हैं”। ज्योतिशी जी बोले “यशोदा जी ‘बार-चार’ प्रथात् प्रतिदिन पैसा कहती हैं”। खानड़ना गये तो बोले “यशोदा ‘बार-चार’ प्रथात्, चाल-चाल (रोम-रोम) से कहती हैं”।

वादशाह ने जब खानड़ना को बताया कि श्रीरंग लोगों ने इसका श्रौर ही श्रौर प्रथ बताया तो खानड़ना ने प्रथं किया, जहाँपार श्रौर प्रथ तो वही है जो मैंने किया। श्रीरंग लोगों ने अपनी श्रवण-शुरुआर उसका प्रथ लगाया है। वादशाह ने पुछा, “अपनी-अपनी श्रवण-शुरुआर कैसे ?”। खानड़ना ने जबाव दिया, तानसेन गवाया हैं, वे स्वभाव से ही एक-एक शंकर को बार-चार गाते हें इसलिए इन्होंने बार बार प्रथं किया। चीरवल वाहन हैं, वाहनों का काम दरवाजे-दरवाजे भीख सांगना है, इसलिए उन्होंने “द्वार-द्वार” प्रथं किया। शेख फंजी कवि हैं रोना-रोना हो नसीब में लिख लाये हैं, इसलिए उन्होंने “रो-रो” प्रथं किया। ज्योतिशी जी का काम दिन बार की विनती करना है इसलिए उन्हें श्रादित्यचार, सोमचार, संगलचार ने की सूती।
गोमाधु तुलसीदास जी के शिष्य वेदीमाधवदास ने इसने सुर का एक वृहद कविता लिखा था। यह तो श्रवण मिलता नहीं, किंतु मूल नीराङ्गचरित्र नाम ने अम्रत मार्ग एवं ही में मिला है जिससे हमने उससे निर्देश पाने के लिए निर्देशित किया था। इस मूल चरित में वेदीमाधवदास 1616 के धर्मशास्त्र में गोपुरलाल के में सदुभजी का गोसाइ तुलसीदास जी के दर्शनार्थ आने का उल्लेख किया है। वेदीमाधवदास लिखते हैं——

गोलिख न पोर्स लगे, कामद निराध दिन वाग।
सुंचि पकांत प्रदेश भरे, भाये सूर सुदराग।
पढ़िये गोपुरलाल जी, सूर संसरंग में वोरी।
हम फेरि चित चातुरी पी, लीन्ह गोमाधु छौरी।

कंवे सूर दिनायु झार को। सुंचि प्रेम कथा नदनागर को।
पद-हयु पुत्री गाय सुनाय रहे। पद पंकज पे तिर नाम बढ़े।
स्मारक शरीक देव श्राम टरे। हरी कौरा गोरे दिगंबर वेरे।
सुनि कोमल शीत नुदाड़ि दिये। पदु पंकज उठाय लगाय हिये।
कहै स्मारक सदा सर चारायत है। हुंसी सेवक की हृद राजत है।
तनिको नहीं संबंध है। श्रीमान। स्मृति सेंधवधानत है। महिमा।
दिन सात रहे सप्तम पाए। पद कंज गहे जय जान लगे।
सुहि वांह गोसाइ प्रवोध करे। पुत्र गोपुरलाल को पन दिये।
ले पाति गये (तब) सूर करे। उर में पदरुक्त के श्राम छोड़ी।

इसके प्रायुक्त सुरदासजी विद्यापूर्त पर्यत्न पर कामद वन में गोसाइ तुलसीदास जी को मिलने आये थे। सात दिन तक वे उनके सत्संग में रहे और उन्हें सुरस्तर दिखाया। दो पद उन्होंने गोसाइ जी को सच्चय
वाकर नुआ्र गोर प्रान हो गुलाम के द्रुत एवं सूरदास के द्रुतगायत श्रद्धा का आशीर्वाद माँगते हुए उनके चरणों में श्रद्धा किया। तुलसीदासजी ने उनके प्रभाव की चढ़ी प्रशंसा की गोर उसे दानों से करा लिया। उन्होंने सूर को विचार दिखाया कि स्याम तुम्हारी सच्चाई का रा घरा करते हैं, वे ब्रवस्थ तुम्हारी कामना पूर्ण करेंगे, क्योंकि भक की स्वच्छता की रजा करना भगवान् का स्वभाव है। इस रासमूल कवि के संदर्भ में सूरदास की कृतियाँ भटक गोर नहीं हो गई। जब सूरदास ने जाने लगे तो गोसाई जी ने गोकुलनाथ जी को पत्र लिखकर दिया।

चेतिमाधव दास का अपने गुरु को बढ़ाने का प्रयास करना स्वाभाविक ही है। सूरदास जी की तुलसीदास जी से हेतू होना बहुत संभव है, परंतु जिस रूप में गोर जिस स्थान पर चेतिमाधवदास ने उसका होना लिखा है वह भी संभव नहीं; यथार्थता उनका प्रयास मिलना ही जन्म प्राप्त है। इस संबंध में गोकुलनाथ जी का उल्लेख हीक नहीं जान पड़ता; क्योंकि संवत् 1816 में उनकी श्रवण देेवूल श्राद वर्ष की थी। ध्यान उनका तुलसीदासजी के पास सूर को भेजना तथा तुलसीदास का उनकी चिठ्ठी लिखना घटता नहीं। संभवतः यह लेखनी का प्रमाण साच है। हो सकता है कि चेतिमाधवदास चिठ्ठीलिखना चाह रहे थे लेकिन गलती से गोकुलनाथ लिखा गया हो जैसा प्रकार हो जाना करता है।

वार्ता में सूरदास के जीवन का एक गोर प्रसंग वर्णित है। वहाँ हैं, एकदा सूरदास बहुत से भक जनों के साथ चले जाते थे। एक स्थान पर देखा कि कुछ लोग चौपड़ खेलने से ऐसे मन है कि विस्तीर्थी भी आते-जाते की स्वर न होती थी। अपने भक्तों के भक्तजनों से सूरदास ने कहा, देखो भगवान् ने इनकी समृद्ध मानव-देह दी है, उसको थे लोग इस तरह चौपड़ खेलने में विता रहे हैं जिसके न इह-लोक में कुछ स्वार्थ सिद्ध होता है और न परलोक में। यहाँ चौपड़
चेलनो ही हो तो कैसे, यह दिल्लाने के लिए उन्होंने नीचे लिखा पद बनाया गया—

मन नू समस्त सोन निनारि।
भवित चित मघवान दुंिँतः कहत निमाम पुकारि॥
साध संगति जान पाता फरि रसना सारि।
द्रव नवके परशो पूरी उतरि पहली पारि॥
वाक सने मुनि प्रजा, पौंछ ही को मारि।
दूर ते तर्जी तीन कान, चरकित चोक विचारि॥
काम भोइ जन्माज भूलयो घयों घनानी नारि।
सूर हृदि के पद मधन विनु चलयो दोष कर भारि॥

चैसुंडयात्रा

सुरद्रात जी के देह-विस्मर्जन की तिथि का तीक-तीक पता नहीं।
परन्तु उसका हस्त-कुच श्रुतिमान लगाया जा सकता है। चौरासी
चेप्पायों की चालाओं में उनकी चैसुंडयात्रा के माध्यम का चर्चान विस्तार
से दिखा हुआ है उससे लिखा है कि जब सुरद्रात जी को मालूम हुआ
कि श्रवंश समय निकर है, भ्रु इलाका चाहते हैं तो परासोली
गाँव में चले ग्रामों जो रासलीला का स्थान माना जाता है। परासोली
से ध्रीनाथजी की ध्वजा दिखाई देती थी। उसके समुच्छ होकर उसे
प्राप्त पर सुरद्राता प्रचूर हो गये। इसपर ध्रीनाथजी ने ध्रीनाथजी
के श्रंगार के समय देखा कि कोई नहीं हो रहा है तो सेवकों को
पुछा कि वे कहाँ हैं। जब उन्हें पता लगा कि सुरद्रात परासोली की
श्रों गये हैं तो समय गये कि सुरद्रात का श्रान्तिकाल निकट है और
सव लोगों से बोले कि पुष्टिमार्ग का जफर दूरनेवाला है। उसमें
से जिसके जो कुछ लेते बचे ले ले, दूर न करे। सारा वैष्णव समुद्राय
परासोली के गौर चल पड़ा। राजभोग भारती इत्यादि करके श्रीगोसाइंजी जी भी सूरदासजी के पास पहुँचे और उनकी कुशलता पुढ़ी। सूरदास जी बोले, अनुष्ठान किया, आप आ गये; मैं वाट देख ही रहा था और यह पड़ गाले लगे—

देखो देखो हृदि जी को एक सुभाव।
श्रति गंगोर उदार उदवि प्रभू जान सिरोमन-राध।
राई जितनी सेवा को फल मानत मेर समान।
समकोट दास अधिराध सिधू सम बूंद न एको जान।
बहूँ प्रसन्न कमल पद सन्मुख दीखत ही है ऐसे।
ऐसे विमुख़ भये कणा या मुखकी तव देखी तव तैसे।
भवत विराह कातर कहियामय डोलत पाँचे लागे।
सूरदास ऐसे चारुको कत दीजै पीठ श्रमाव।
चतुर्भुजदास जी भी उस समय बहुँ थे। उन्होंने पूजा सूरदासजी भगवद्गीता का तो आपने लुढ़ वर्षन किया है पर कभी गुरुवन्दना नहीं की। सूरदास ने कहा माई चागर में भगवान श्रीर गुरु में भेड़ समक्षता तो भगवान की अर्जना वन्दना करता श्रीर गुरु की अर्जन। परन्तु बस्तूँ: भगवान श्रीर गुरु में पार्श्वक्य है हो नहीं। इसलिए उनके अर्जन-अर्जन यशोगान की आचरणकता नहीं। फिर भी चतुर्भुजदास का सन रखने के लिए उन्होंने यह पढ़ गया—

भरोसी हृदः इन चरमिन केरी।
श्रीबल्नम नख चंद्र छटा विनु सव जग माँफिये ब्रह्मेरी।
साथन श्रीर नहीं या कलिये जायें तीत निवेरी।
सूर कहा कहि द्विवि श्रीघरी विना मोल को चेरी।
यह पढ़ गाकर सूरदास को मृद्दो था गई। तव श्री गुसाइंजी जी ने उन्हें सवन-सतने की चेतना करने हुए पूजा सूरदासजी चित की बृति कहाँ है? उत्तर सूरदास जी ने गया।—
सागविहारारी

वदि वन वन ही कृमार रामिका, नद गुण जागों रतिमानी।
वे वदि चन्द तुम चन्द मिरामेन त्रोति करी फूलें होतें हैं छानी।
पेनु घरत तन कंक पीत पत तो तो सच तेरी गति घानी।
वे पुनि स्याम सहेज वे नोभा ग्रंवर गिम प्रनें पर रानी।
पुलकित फ्रंग प्रभवी हैं प्रार्थना निरन्तर देंद्र निब देख सयानी।
सूर हुजान सति के बूमः प्रेम प्रकाश भयो विहसानी।

यह कहते कहते उनकी प्रार्थना पवटवा 'प्राई। इसपर गोसाईजी
ने पूजा सूरदास जी नेत्रों की वदि कहें यहं—

संज्ञन तनं सप रस माते।
वदि नाम चन प्रनियाने पन पिवना न तमाते।
चन चति जात निकट ध्यानन के उलटि पुलिट टार्क फेंकते।
सूरदास श्रंजन गुन श्रंके नतग श्रंक उड़ि जाते।

यह कहते कहते इस लोक की बोधों का संप्रभु कर सूरजी
भगवान् लोकों में समा गये।

इस वर्णन से सूरदास जी के दृष्ट-विषयक का विवरण तो मिलता
ही हैं, साथ ही साथ उनकी स्तुति का समय निर्धारित करने में भी
सहायता मिलती है। इस वर्णन से यह स्पष्ट है कि सूरदास जी गोसाईजी
भिडनाथजी की स्तुति संवत १६४२
में हुई। इसलिए सूरदास जी की स्तुति संवत १६४२ से पहले हुई
होगी। ऊपर अवलोकन के अनुसार का हम जिक कर प्राप्त हैं, उसके
पता चलता है कि सूरदासजी संवत १६४० तक विद्यमान थे। क्योंकि
उसमें वादशाह के इजाहावाद ग्राम दो सूचना दी है और इजाहावाद
की स्थापना संवत १६४० में हुई। अतएव सूरदास की स्तुति संवत
१६४० और १६४२ के बीच किसी समय मे होनी चाहिए।